मानव मन्दिर

2182
7242

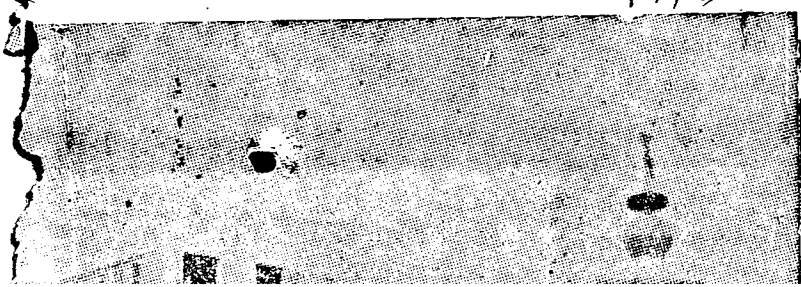

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarp ı.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Prem Prakash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Prem Prakash Sharma at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग 16-2-97 को होगा ।

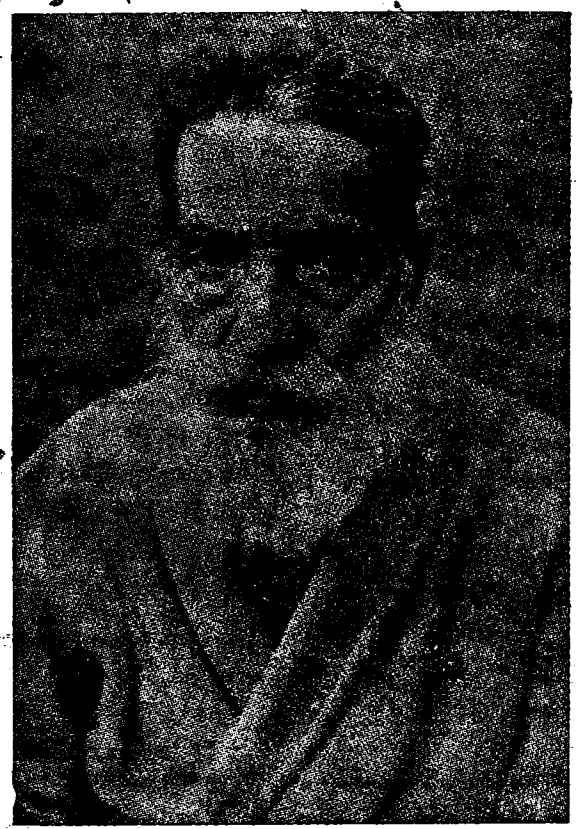

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

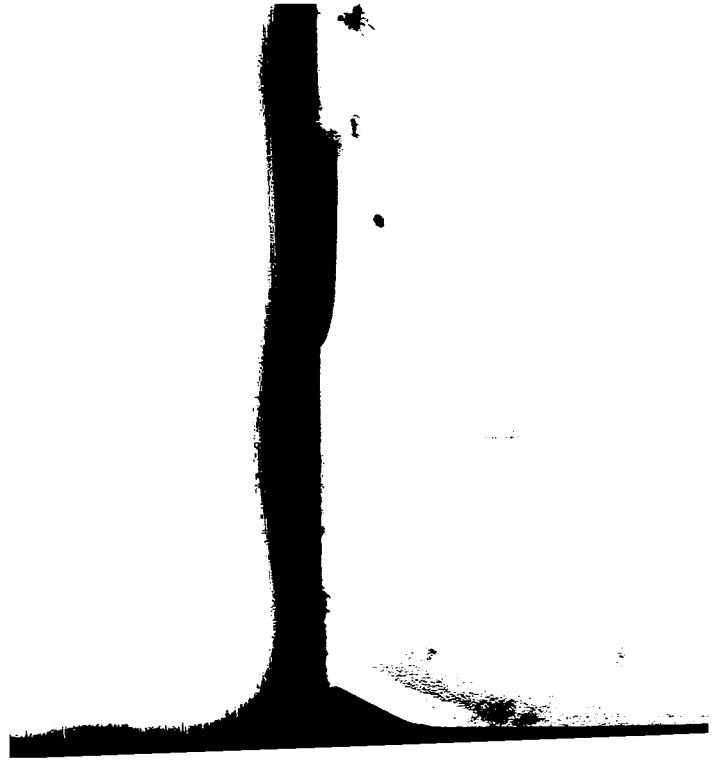

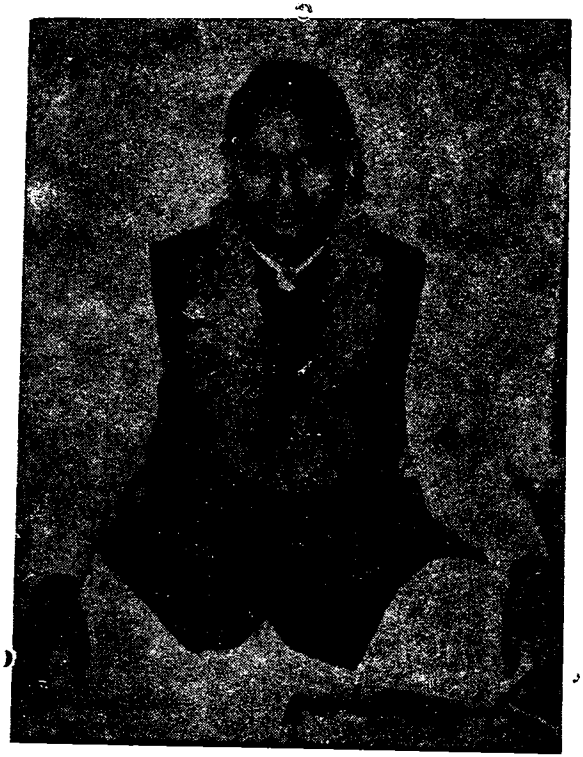

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

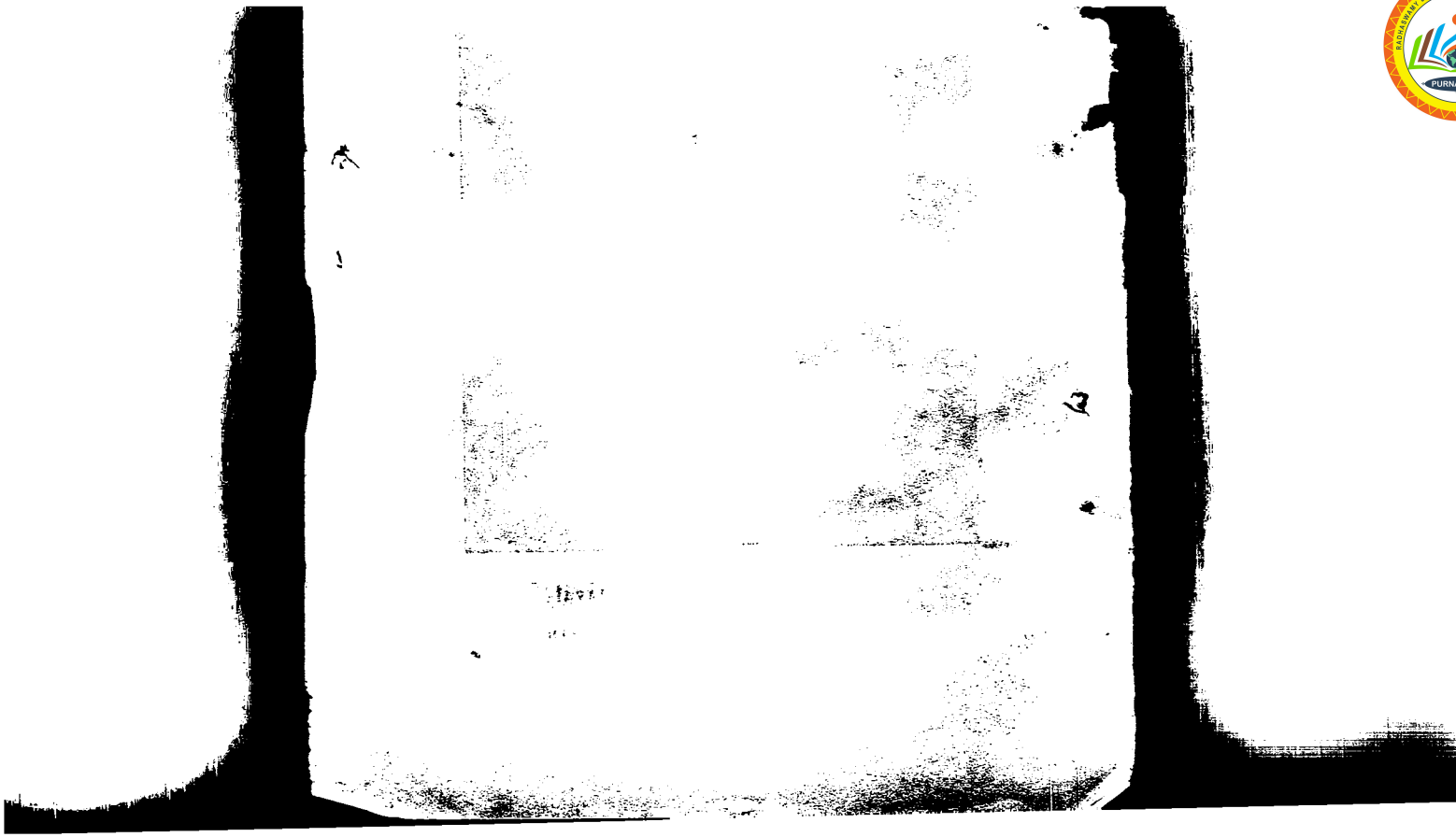

मासिक :

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास को
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
श्री प्रेम प्रकाश शर्मा

वर्ष 24 | सोमवार 10 फरवरी, 1997 | संख्या 10

राधास्वामी योग

दूसरा भाग

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

❋ योग की प्रथम विधि ❋

पांचवां वचन

ख्याल (कल्पना) की रस्सी

ख्याल मन की गति और मन के सङ्कल्प-विकल्प की धार है। इसी धार से दुनियां बनती है। जिस प्रकार शुद्ध जल की धार किसी अधिक ठण्डे स्थान पर पहुंच कर बर्फ के रूप में जम जाती है वैसे ही ख्याल या संकल्प-विकल्प की धार महाभूतों की सूक्ष्म अस्वथा में बदल जाती है।

इसकी गति उस समय तक दुःखदाई नहीं होती जब

तक उसके पीछे अहंकार को नहीं लगाया जाता । जितना दुःख और क्लेश है वह अहंकार ही से उत्पन्न होता है। मन में घर बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होने के समय वह सूक्ष्म रहता है, परन्तु शनैः-शनै यही वस्तु ईण्ट, पत्थर होती हुई मकान के रूप में बदल जाती है। मकान बन गया। अब उसमें कुछ दिनों तक वास करो, लेकिन अहंकार और ममत्व को चित्त में स्थान न दो। तुम उसके स्वामी और भोगने वाले बने रहोगे। लेकिन ममत्व और अहंकार के आते ही जड़ और निर्जीव मकान तुम्हारी ही शक्ति और तुम्हारी ही असलियत को लेकर मालिक और भोगने वाला बन जायगा। तुम उसके भोग और आधीन हो जाओगे और अपने आपे को खोकर स्वयं ही जड़ और निर्जीव बनने लगोगे। यह दशा अति हानिकारक है।

पशु-पक्षी भी तो अपने रहने के घोंसले और बिल बनाते हैं। उनको मनुष्य की तरह इतना अहंकार नहीं होता। इस कारण इनको इस अपेक्षा से कष्ट भी नहीं होता, परन्तु मनुष्य को दुःख होता है। इसका कारण उसका अपना अहंकार है। यदि वह किञ्चित सम्भल-कर और सोचकर रहे तो विपत्तियो का शिकार कभी न बने। लेकिन क्या किया जाय ? वह तो उसे अनावश्यक महत्व देकर अपने महत्व को खो देता है और पशुओं से भी गया-बीता बन जाता है।

इसी प्रकार संसार के अन्य पदार्थों के विषय में समझ लो।

यह अहंकार कल्पना की मोटी रस्सी है जो मनुष्य को जकड़कर बान्ध लेती है।

मैं मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कहें कबीर कब लग रहे, रूई लपेटी आग॥

छठवां वचन

अहंकार बुरा दर्पण है

दर्पण यदि ठीक है तो उसमें सूरत का अक्स आता है। दर्पण में यदि बाल है तो सूरत बुरी दिखाई देगी। इसी प्रकार अहंकार की भी दशा है। यदि अहंकार रूपी दर्पण अच्छा है तो उसके द्वारा आत्मा के ज्ञान की सम्भावना है। यदि वह दोषयुक्त है तो बुरी सूरत बनाकर दिखाता है और अपने ही से घृणा होने लगती है। संसार या आत्मा का दर्पण बनाने वाला कलाकार अहंकार को ही समझो। प्रथम यह तुम्हारे भावों को तोड़-मरोड़कर तुम्हारी बुरी शक्ल बना देता है। उसके पश्चात् यह तुम्हारे संसार को तुम्हें दिखाता है। जो कुछ तुम अपने चारों ओर देखते हो वह तुम्हारे ही बिगड़े

हुए रूप का प्रतिबिम्ब है। पहिले इसे ठीक कर लो। इसके सुधार में लग जाओ।

इसके बाल ठीक कर लो। जब यह स्वच्छ और चिकना हो जायगा तब इसमें इतना विकार न रहेगा और यह प्रतिबिम्ब को अच्छी शक्ल में दिखावेगा। इससे इतनी विपत्ति न होगी।

दर्पण यदि अच्छा है तो सूरत अच्छी दीखेगी। दर्पण यदि बुरा है तो बुरी सूरत दीखेगी। यह पहिली बात है जो हृदयांकित करनी है।

दूसरी बात यह है कि दर्पण ठीक भी हो तो जिस तरह तुम अपनी सूरत बनाकर उसमें देखोगे उसी प्रकार का प्रतिबिम्ब (अक्स) तुम में दिखाई देगा। यदि सूरत बुरी बनाई है तो बुरी प्रतीत होगी। यदि अच्छी बनाई है तो अच्छी नजर आयेगी अर्थात् हृदय रूपी दर्पण में किसी सत्पुरुष की शक्ल देखोगे तो वैसी ही नजर आयेगी।

तीसरी बात यह है कि दर्पण हजार अच्छा भी हो फिर भी वह तुम्हें अपने आधीन रक्खेगा और दो वस्तुयें रहेंगी। एक तुम और दूसरा तुम्हारा दर्पण। यह दुई तुम्हारी खराबी का कारण बनी रहेगी। अपेक्षित रूप से चाहे वह इतनी बुरी न हो मगर बुराई की जड़

उसमें है। मालूम नहीं वह किस समय तुम्हारे विचार के मानसिक समुद्र में बुराई के भावों की हिलोरें उठा दे। उस समय फिर वही खराबी दर्पण के ठीक होने पर बनी रहेगी।[1]

चौथी बात यह है कि दर्पण केवल बुरी-भली सूरत बनाता है। इससे अधिक उसमें अन्य प्रकार की शक्ति नहीं है। यह उसका स्वाभाविक गुण है।

पांचवीं बात तुम्हारे सोचने की यह है कि तुम किस तरह दर्पण में सदा अच्छी ही सूरत देखते रहो ताकि बुरी सूरत न दीखे। इस रहस्य का जानना आवश्यक है। सदा अच्छी सूरत का दीखते रहना उस समय सम्भव है जब मन या चित्त में किसी अच्छी सूरत का ध्यान बसा हुआ हो। इस अच्छी सूरत का नाम ईश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म, सतपद और राधास्वामी है। इन सब नामों के अन्दर अच्छाई और भलाई के दरजे हैं। इनमें से तुम जिस किसी के ख्याल को मन में स्थान दोगे उसी तरह पर अपना रूप दर्पण में देखोगे।

छठी बात यह हैं कि दर्पण के देखने का अभिप्राय क्या है ? अभिप्राय यह है कि तुम बिल्कुल अच्छे

1. हृदय रूपी दर्पण के स्वच्छ करने की विधि सूक्ष्म में 'राधास्वामी योग' के प्रथम भाग में दी जा चुकी है और आगे आयेगी।

हो जाओ। और इस प्रकार के अच्छे बनो कि बुरी सूरत लेश-मात्र भी न रहे। यह दर्पण देखने का प्रारम्भिक ध्येय है। अन्तिम ध्येय यह है कि इतने अच्छे हो जाओ कि फिर बार-बार दर्पण को न देखते रहो और सार और असार, असल और नक़ल अथवा तुम और तुम्हारी परछाई दोनों एक हो जायें।

सातवीं बात यह है कि असल और नक़ल को एक करके उसमें महावियत (लय) की अवस्था अपने अन्दर उत्पन्न कर लो। जब यह दशा प्राप्त हो जायगी तब तुमको सतपद की अवस्था प्राप्त हो जायगी और यह ही इष्ट पद है और इसी का नाम धुरपद और राधास्वामी धाम है।

यदि सात बातों को भले प्रकार हृदयांकित कर लो, तो फिर राधास्वामी मत की शिक्षा और उसका महत्व अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जायगा।

सातवाँ वचन

दर्पण का उदाहरण

गांव वालों की कहानी हैं। किसी बन्दर को जंगल में एक दर्पण मिल गया। उसने अपने कान बनाकर उसमें अपनी सूरत देखी। हंसा और सब जानवरों को

दिखाने लगा। सबसे प्रथम रीछ ने देखा। वह अपने रूप को देखकर बोला— "अफसोस ! मैं बड़ा कुरूप हूं और झाड़ियों में छिपने लगा"। भेड़िये ने उसे देखकर सोचा — "यदि मुझ में बारह सिंघे का सिर और उसके जैसे सुन्दर सींग होते तो अच्छा होता" । बारी-बारी से सब जानवरों को दर्पण दिखाया गया । किसी को लज्जा प्रतीत हुई। किसी में अशान्ति आई । किसी को किसी बात की इच्छा पैदा हुई और एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक सब ही असन्तोषी, व्याकुल और अशान्त हो गये। शान्ति और निरभ्रान्ति दिलों से जाती रही।

बन्दर ने उल्लू को जाकर यह दर्पण दिखाना चाहा। उसने कहा— "मैंने छोड़ा यह दर्पण देखना! जिस-जिस ने दर्पण देखा है, वह अपने आपे से जाता रहा। दर्पण का ज्ञान दुःखदाई है। इससे तो अविद्या ही हजार गुणी श्रेष्ठ हैं" !

सब पशुओं ने उल्लू की बात सुनकर यह निर्णय किया कि इस दर्पण को दूर कर दो। बन्दर चालाक था । उसने किसी ऐसे स्थान पर ले जाकर दर्पण को रख दिया जहां मनुष्य रहते थे। दर्पण उनके हाथ पड़ा। वह भी पशुओं की भान्ति विक्षिप्त हो गए। कोई अपने को अच्छा और दूसरे को बुरा कहने लगा। कोई अपने

को बुरा और दूसरे को भला मानने लगा। परिणाम यह हुआ कि सब मनुष्य एक-एक करके द्वेषमना, निर्दयी और लालची बन गये और अपनी प्रशंसा करने लगे और दूसरों की निन्दा करने लगे। उनमें ऐसे दूषित भाव पैदा हो गये कि वह अपने सजातियों को अपने आधीन और आश्रित बनाने लगे और ऐसे बुरे हो गये कि पशु तो फिर भी अपने सजातियों का पास करते हैं पर यह हजारों ही युक्तियों से अपने भाइयों को सताने, दबाने और दुःख पहुंचाने लगे और फिर स्वयं भी अपनी बारी पर उनके पराधीन बनते गये और पशुओं से भी बुरे होते गये। यह बात अब तक मनुष्य जाति में सबसे अधिक मौंजूद है और दुनियां में इनसे अधिक और कोई दुःखी नहीं है। अपने चारों ओर देखो और तुमको आप ही प्रतीत हो जायगा।

मनुष्य ने यह उपद्रव मचाया कि पिञ्जड़े में तोते और पक्षियों को फंसा-फंसा कर उनके सामने दर्पण रख दिया और आप उसके पीछे बैठ कर बोलियां बोलने लगा। कई धोखे में आये और मनुष्य की बोली को अपने सजातियों की बोली समझकर उसको नक़ल उतारने लगे और भटक गये। इस दर्पण की सहायता से बहुत से पशु उनके फन्दे में बुरी तरह से फंसे और अब स्वभाव वश फंसते जा रहे हैं। जो दूसरों को फंसाता है वह आप फंसता हैं। जो दूसरों को लूटता है वह आप भी

लूटा जाता है । मनुष्य ने पशुओं को अपने आधीन बनाया और परिणाम यह हुआ कि खुद भी इन पशुओं के आधीन हो गया। अपनी समझ से तो वह समझता है कि मनुष्य स्वामी है और सब सेवक हैं। पर वास्तविक रूप में देखा जाय तो वह स्वयं भी पशुओं का सेवक और आधीन हो रहा है और अपने मनुष्यपने से कोसों दूर जा पड़ा है कि पशुओं के जीवन को अपने जीवन का बहुत बड़ा अंग मान रहा है। धिक्कार है ऐसी मानवता पर ! लानत है इस मानवीयशील पर !!

अज्ञानी मनुष्य अज्ञानता का इतना शिकार हुआ कि पशुओं की श्रेणी से भी गिरकर मनुष्यों का शिकार बना हुआ है। एक मनुष्य भी संसार में ऐसा न होगा जो दूसरे मनुष्य को मार-मार कर न खाता हो। कोई हाकिम बनकर दूसरों पर शासन करता है और कोई नौकर रखकर उनकी सेवा का आप फल भोगता है। जिस प्रकार गाय को रखकर उसका दूध, घी आप हड़पता है वैसे ही एक ही व्यक्ति हजारों का अफसर बनकर उनसे रात-दिन सेवा लेता और केवल दो मुट्ठी चावल या अनाज देकर उनको अपने आधीन रखना चाहता है। न यह खुश और न वह खुश ! संसार में हर जगह अशान्ति फैली हुई है और मनुष्य इसी बैचेनी को शिष्टाचार और सभ्यता कहता है और जब कभी किसी मनुष्य को यह पराधीनता असह्य हो जाती है तब तोप और

बन्दूकों इत्यादि के आविष्कार से उनको डरा और धमका कर, घायल करके और मार कर अपने आधीन रखने की युक्तियां सोचता है।

क्या यह दशा अच्छी है। राम-राम कहो!

यह दशा केवल इस अहङ्कार रूपी दर्पण के हाथ लगने से हुई है। आप तो नष्ट हो रहा है। अपने साथ अपने भाइयों को भी रात-दिन दुःखी करता रहता है। यह मनुष्य की दशा हो गई है। और जो जितना सभ्य है, उतना ही अधिक अत्याचारी बना हुआ है। भाषा विज्ञान का अभिमान, विद्या, कला-कौशल का अभिमान, जातीयता का अभिमान, वस्त्र और आभूषणों का अहङ्कार रीति-रिवाज का अभिमान कहां तक कहें हजारों ही प्रकार के अभिमान मनुष्य को सता रहे हैं। वह एक क्षण के लिए भी नहीं सोचता कि इसका परिणाम क्या हो रहा है? संसार नर्क का स्थान बन गया है। सुख और हर्ष कोसों दूर हैं। नर्क को कहां खोजते हो? क्या मनुष्य की बुद्धि और अहंकार ने इस संसार को नर्क नहीं बना लिया हैं! सोचो, समझो, तब यह विषय भली प्रकार समझ में आवे।

(क्रमशः)

काल चक्र

30 दिसम्बर 1973 मानवता मन्दिर, होशियारपुर में

परमसन्त परमदयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

दिया गया सत्संग

सोच समझ कर जतन फ़कीरवा
छिन्न-छिन्न उमर छटति दिन राती।
कभी सांझ कभी परभाती॥
माया मोह महा उतपाती।
इनसे लगा मत लगन फ़कीरबा॥

सुख सम्पति धन माल ख़ज़ाना।
इन्हें देखि क्यों जिया ललचाना॥

झूठे हैं सब नाम निशाना।
तासों उपजे तपन फ़कीरवा॥

गुरु भक्ति है सब का सारा।
देखा सोचा समझ विचारा॥
मानेगा कोई गुरुमुख प्यारा।
मान मान यह वचन फ़कीरवा॥
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी।
अब बुझी मन की जलन फ़कीरवा॥

राधास्वामी!

यह संसार एक चक्र है और सारा संसार इस चक्र में चक्कर खा रहा है। मैं भी इस चक्र में आया हुआ था। वह चक्र क्या था? वह चक्र यह था कि मैं उस मालिक को मिलने निकला था और देखना चाहता था कि मेरा आदि क्या है? इस सिलसिले में, एक दृश्य द्वारा मैं हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज के चरणों में गया। मैं उनको राम या मालिक का अवतार समझ कर उनकी पूजा करता था। उनको मत्थे टेका करता था, फूल चढ़ाया करता था और उनको कीमती वस्त्र भेंट किया करता था। यद्यपि मैं उनसे इतना प्रेम करता था, सेवा करता था, फिर भी वह मुझे कहा करते थे— "फ़कीर! जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए तुम इतने यत्न करते हो, उसके लिए कुछ सोच-विचार कर ही यत्न करो"।

सोच समझ कर जतन फ़कीरवा।

राधास्वामी मत मेरे लिए एक नई बस्तु थी। राधास्वामी मत में ईश्वर या परमात्मा की भक्ति नहीं है, तभी तो बहुत से लोग इस मत के विरुद्ध हैं। मैं समझता हूं कि अपने स्थान पर वे सच्चे भी हैं। क्योंकि बचपन से ही हम लोगों को ईश्वर और उसकी भक्ति का संस्कार मिला हुआ होता है। यदि आप किसी को उसके विश्वास के विरुद्ध बात करो, उनका विश्वास तोड़ो, तो क्या होगा? वह व्यक्ति या तो तुमको गाली देगा या तुम्हारे जाल में नहीं फंसेगा। पहले लोग राम, कृष्ण तथा देवी देवताओं के जाल में फंसे हुए थे, अब उनमें से कुछ गुरुओं के जाल में फंस गए। मैं स्वयं भी राम कृष्ण के जाल में फंसा रहा। मनुष्य काल के चक्र में कब तक फंसा रहता है? तब तक जब तक उसे ज्ञान नहीं होता, असली बात समझ में नहीं आती। इसलिए ही दाता दयाल जी मुझे समझाते रहते थे कि यत्न भी सोच समझ कर करो। मैं आप से पूछना चाहता हूं गुरुभक्ति क्या है? गुरु को पैसा देना, फूल चढ़ाना तथा वस्त्र आदि भेंट करना, गुरुभक्ति नहीं हैं, यह तो दुनियाबी काम है। असली गुरुभक्ति तो जो दाता दयाल जी महाराज ने बताई वह हैं। वह क्या हैं? आपको बताता हूं—

काल चक्र है सहज हिंडोला।
झूला अचरज न्यारा॥

जब कोई झूले झूला चढ़कर।
काल झुलावन हारा॥
चन्द्र सूर दोऊ गगन में झूले।
झूले नौ लख तारे॥
जीव जन्तु पृथ्वी में झूलै।
नर पशु सकल विचारैं॥

मैं पूछता हूं क्या यह झूठ है ? अब धूमकेतु अर्थात् पुच्छल तारा आ गया, जो लाखों मील लम्बा चौड़ा है। वह सारे का सारा है क्या ? चक्र ही तो है। यह गाड़ी चल रही है। हम तो उसको पूजते हैं, जिसने यह संसार रचा है। राधास्वामी मत ने इससे भी आगे की बात बताई है। मैं राधास्वामी मत का पक्ष नहीं लेता और न ही मैं सन्तों की हां में हा मिलाता हूं। मैंने जो अनुभव किया है उसके अनुसार बताता हूं—

राजा झूला रानी झूली।
और प्रजा समुदाई॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर झूले।
झूली सब दुनियायी॥

इतिहास को पढ़ो ! राक्षसों को मारने के लिए कभी राम बने, कभी कृष्ण बने, कभी विष्णु बने और कहीं शिव का रूप धारण किया। ज्योतिष कहता है कि देवता और नक्षत्र भी आपस में लड़ते हैं।

लक्ष्मी झूली, दुर्गा झूली।
झूली गायत्री महारानी॥
देवा झूले, देवी झूली।
जल थल अग्नि पानी॥
काल भी झूला अपने झूला।
सृष्टि प्रलय कर प्यारे॥
वह भी बचा न चक्र से अपने।
झूला झूले सारे॥

सन्त कहते हैं कि जिसने यह संसार रचा है, वह भी झूलता है—

चढ़ी पेंग तब ऊपर आये।
उतरे नीचे ठहरे॥
कभी मिले तो जमघट देखी।
बिछुड़ के गए न्यारे॥

में चकित होता हूं कि हम लाख प्रयत्न करने पर भी विपरीत ग्रह चाल में आकर गिर जाते हैं, बड़े-बड़े सन्त महात्मा भी गिर जाते हैं। धनवान एकदम निर्धन हो जाते हैं तथा सुख के स्थान पर दुःख घेर लेता है। यह सब क्यों होता है? काल के चक्र के कारण। जिसने यह सृष्टि रची है, उसने ही हमें संकट में डाला है। आप देखते हो कि कितनी सर्दी पड़ती है, जिससे हज़ारों लोग मर जाते हैं, भूचाल आते हैं, बाढ़े आती हैं,

सूखा पड़ता है, जिससे संसार को बहुत ही हानि होती है। क्या यह मानव करता है? नहीं। ज्योतिष कहता है कि 6 जनवरी तथा 7 जनवरी 1974 को (दोनों दिन पूर्णमाशी है) चन्द्रमा पृथ्वी के निकट आ रहा है, इससे समुद्र में प्रबल ज्वारभाटे आयेंगे, तूफान आयेंगे और बहुत ही हानि होगी। सृष्टि रचने वाले ने हज़ारों, लाखों, करोड़ों तथा अरबों ही नहीं, खरबों कीड़े-मकौड़े, मच्छर आदि बनाये हैं, वे हर क्षण मरते रहते हैं। हम भी डी. डी. टी. इत्यादि से उन्हें मारते रहते हैं। हमारे शरीर के अन्दर भी करोड़ों जीव-जन्तु हैं। यह सब क्या है? काल ही का तो चक्र है। इसलिए सन्त ईश्वर, परमेश्वर ब्रह्मा या काल को नहीं मानते। परन्तु इसके सम्बन्ध में मेरा निजि अनुभव यह है कि सन्त ईश्वर, परमेश्वर और ब्रह्मा की उपासना नहीं करते, परन्तु उससे मिलकर, अपने इस त्रिगुणात्मक जीवन को सुखमय बनाते हैं तथा आनन्दमय बनते हैं।

क्योंकि यह रचना सत् चित् आनन्द यानि कि शरीर, मन तथा आत्मा या त्रिगुणात्मक जगत् की है, यह कितनी भी अच्छी क्यों न हो जाय, फिर भी हमारे अन्तर में जो असली वस्तु है जो इन सबका अनुभव करती है, जिसको सन्त सुरत कहते हैं वह भी इस चक्र से निकल नहीं सकती। अतः सन्तों ने जीव को सद्गुरु का इष्ट दिया। सद्गुरु नाम है सच्चे अनुभव का और सच्चे

ज्ञान का। वह सच्चा ज्ञान क्या है ? यह तो सन्तों को ही पता होगा, परन्तु जो ज्ञान मैंने प्राप्त किया है, मैं उसके विषय में बता सकता हूं। जब से मुझे यह ज्ञान हुआ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, परन्तु मेरा रूप लोगों के अन्तर प्रगट होकर, उनके काम कर देता है, तब से मैं उस वस्तु की खोज करता रहता हूं, जो मेरे चित के अन्दर सत्त चित्त और आनन्द की साक्षी है। जो प्रकाश को देखती है तथा शब्द को सुनती है। प्र ाश को देखते तथा शब्द को सुनते हुए भी, वह प्रकाश और शब्द से परे है। वह मालिके कुल की अंश है। अरे मेरे प्यारे ! तुम स्वयं ही असल में वह हो। जब सुरत को यह ज्ञान हो जाय कि— "मैं तो उस मालिक की ही किरण हूं, उससे अलग नहीं हूं। मैं तो संसार में केवल खेल खेलने ही आई हूं।" तो सुरत काल के चक्र से निकल सकती है। वह इस चक्र के काल के किसी भी खेल को बदल सकती है। मैं नहीं बदल सका। पहले मेरा यह विचार था कि सन्त तथा महापुरुष काल के खेल को बदल सकते होंगे। परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह भी इस काल चक्र को नहीं बदल सके । उनकी जीवन कथायें बताती हैं कि वह काल चक्र को हर्गिज़ नहीं बदल सके और न ही इसे कोई बदल ही सकता है। काल चक्र को बदला नहीं जा सकता। इस विचार को सदा ही मन में रखना पड़ेगा कि काल

चक्र तो सृष्टि का एक नियम है और यह नियम चलता ही रहता है ।

होने वाली बात तो होकर ही रहती है। हां ज्ञानी व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल जाता है। वह दुःख में हाय-हाय नहीं करता और न ही सुख में फूल जाता है। इस ज्ञान से कि सृष्टि की इस रचना में जो कुछ भी हो रहा है, वह सब एक शक्ति के आधीन है और उसी का ही सारा खेल है तो मुझे बहुत शान्ति मिली।

ऊपर मैंने आपको बताया कि सन्त ईश्वर या परमेश्वर की उपासना नहीं करते, बल्कि उनसे मेल करते हैं। अब आप लोग यह प्रश्न करोगे कि ईश्वर या परमेश्वर से मेल कैसे होता है ? सुनिये ! इस बात को तो सभी जानते हैं, मानते हैं कि— "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" जो आपके शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। यह जितने देवता या शक्तियां हैं, वे सब सभी मनुष्यों के शरीर के अन्दर भी सूक्ष्म रूप मैं विद्यमान हैं। इसका प्रमाण यह है कि हमारा स्थूल शरीर विटामिनज् तथा मिनरलज् से बनता है और यह हमारे शरीर में आहार द्वारा बाहर से ही आते हैं, या हमारे माता-पिता के द्वारा हमारे अन्दर आते हैं। इसी प्रकार, हमारा जो मन है, यह ग्रहों के प्रभाव के कारण फुरना करता है । यदि नीच ग्रह पड़ा हुआ हो, तो नीच विचार

उठता है और व्यक्ति नीच काम करता है। यदि अच्छे ग्रह पड़े हुए हैं, तो व्यक्ति अच्छे काम करता है। इसी प्रकार, हमारे अन्दर प्रकाश जो आत्मा का रूप है, वह भी ऊपर से किसी प्रकाश के लोक से आया है। ऐसे ही सुरत भी कहीं से हमारे अन्दर आई हुई हैं।

हिन्दू चक्र गणेश को गुदा चक्र में मानते हैं, इन्द्रीं में ब्रह्मा, नाभि में विष्णु, हृदय में शिव तथा कण्ठ में सरस्वती को मानते हैं। ज्योति स्वरूप जो रचना करता है, सन्त उसको सहस्र दल कंवल में मानते हैं। जो संकल्प की शक्ति विवेक और विचार को शक्ति है, उसे त्रिकुटी में 'ओ३म' के रूप में मानते हैं। जो आनन्द, मस्ती, हर्ष तथा मानसिक शान्ति है, उसका आधार सुन्न तथा महासुन्न में माना जाता है, जिसका दूसरा नाम निरंकार, या 'ओ३म्' या बिन्दु है। अहंभाव या आत्मपने को सन्त अपने अन्तर में भंवरगुफा में सोहंग पुरुष बतलाते हैं। सन्त अपने अन्तर में इन स्थानों पर, इन प्राकृतिक शक्तियों का साधन करके, अपने ही अन्तर में हर्ष, आनन्द, विवेक और मस्ती प्राप्त करते हैं। अतः मैं यह नहीं मानता कि सन्त इन शक्तियों को नहीं मानते। वे मानते तो हैं, परन्तु इन्हें दण्डवत नहीं करते और न ही इनकी पूजा करते हैं। हां इनसे मिलकर अपने त्रिगुणात्मक जीवन को सुखमय बना लेते हैं। कोई सन्त हो या परमसन्त, वह इन शक्तियों से इन्कार कर

जहां वहां धरनि आकाशा,
करे कोई सन्त वहां बासा ॥
वहां गम काल की नाहीं,
वहां नहिं धूप नहिं छाहीं।
न योगी जोग से ध्यावे
न तपसी देह जरवावे ॥
सहज में ध्यान से पावे,
सुरति का खेल जेहि आवे।
सोहंगम नाद नहि भाई,
न बाजै शंख सहनाई ॥
निरच्छर जाप तहं जापै,
उठत धुन सुन्न से आपे।
मन्दिर में दीप बहु बारो,
नयन बिनु भई अन्धियारी ॥
कबीरा देश है न्यारा,
लखें कोई नाम का प्यारा ॥

महर्षि शिवव्रत लालम्,
सद्गुरुम् परमेश्वरम्।
वन्दे श्री दाता दयालम्,
सर्वेषाम् परमं गुरुम् ॥

परम तत्वस्य अवतारम्,
परम पूज्यम् सत्यगिनाम्।
मानवस्य परम इष्टम्,
फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

राधास्वामी !

मेरी आत्मा के स्वरूप, साक्षात् सद्गुरु रूप, प्यारे सत्संगी भाई और बहनो,

आज के मासिक सत्संग के अवसर पर जो शब्द पढ़ा गया है वह हमारा ध्यान एक विशेष तथ्य की ओर आकर्षित करता है। वह विशेष तथ्य यह है कि जिस अन्तिम लक्ष्य परम तत्व सर्वाधार को हम ढूँढते चले हैं, जिसे हमने परम तत्वावतार कहा है हमने—

परम तत्वस्य अवतारम्,
परम पूज्यं सत्संगिनाम्।
मानवस्य परम इष्टम्,
फकीरम् बन्दे जगद्गुरुम् ॥

मानव का अर्थ लोग समझते नहीं है। लोग तो यही समझते हैं कि आमतौर पर जो कोई अच्छा काम करता है, कोई धर्मशाला, या स्कूल खोल देता है, या कुछ अच्छी बातें बताता है तो वह मानव है। और अगर इससे विपरीत उसका ध्यान बुरी बातों की तरफ

जाता है, तो वह दानव है। लेकिन यहां 'मानव' शब्द का यह भाव नहीं है। संस्कृत भाषा में यह विशेषता है कि जिस शब्द का उच्चारण किया जाता है, उस शब्द के अन्दर ही उसका अर्थ मौजूद होता है। 'मानव' शब्द 'मनु' तत्व से निकला है। मनु ने ही स्मृति लिखी। हिन्दू लोग कहते हैं कि हम मनु को मानते हैं। लेकिन मनु ने जो ज्ञान, जो शिक्षा हमें दी हैं, उस पर कोई भी अमल नहीं करता। मनु तत्व है उसका आधार। और भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कहा— मैंने यह सुरत-शब्द योग— जो सन्त मत का सार है— सबसे पहले विवस्वान (सूर्य) को दिया था। सूर्य ने वह सार तत्व का ज्ञान अपने पुत्र मनु को दिया। मनु ने इक्ष्वाकु को दिया, और राज ऋषियों को वह तत्व भेद बताया। लेकिन काल इक्ष्वाकु ने अनेक के व्यतीत होने पर वह तत्व ज्ञान लुप्त हो गया। लेकिन, हे अर्जुन तुम्हारे प्रेम-भक्ति से प्रभावित होकर वही लुप्त हुआ तत्व-ज्ञान आज मैंने तुम्हें दिया है। क्योंकि तू मेरा भक्त है और मेरा प्यारा है। क्योंकि जिसे प्यार करते हैं, उससे दुराव या भेद नहीं रखते हैं। प्रेम में कोई नियम नहीं है। प्रेम अपना नियम आप ही है। इसलिए जो प्यारा होता, उससे झूठ नहीं बोला जा सकता।

सांच कहूं तो कोई न माने,
झूठ कहा नहिं जाई हो।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुःखिया,
जिन यह राह चलाई हो।।
अवधू दुःखिया भूपति दुःखिया,
रंक दुःखी विपरीती हो।
कहें कबीर सकल जग दुःखिया,
सन्त सुखी मन जीती हो।।

वह भेद है— मन को जीतना। लेकिन मन को जीतना बहुत ही कठिन है। और बहुत ही सरल भी है। आप जब मन को जीतने के लिए प्रयत्न करते हैं, जैसा कि इस शब्द में था जो साधना ने पढ़ा है— मन को जीतने के लिए अनेक यत्न करने पड़ते हैं, अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है, अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। लेकिन एक बार जिसने मन को सद्गुरु के समर्पित कर दिया, तो फिर उसे कोई यत्न, मुसीबत या कठिनाई नहीं सहनी पड़ती। किसी भी व्यक्ति के मन का तार जब मालिक से मिल जाता है और वह मालिक के प्रेम में ओत-प्रोत हो जाता है, तो उस पर एक अवस्था तारी हो जाती है, जहां न दास रहता है। न मालिक रहता है, न गुरु रहता है, न शिष्य रहता है। केवल एक सत्ता— एक हैपने की अवस्था रह जाती है। वह अवस्था ही परम अवस्था— असली अवस्था है। उसी अवस्था को प्राप्त करने के लिए—

'कोटि कोटि मुनि यतन कराहीं ।
अन्त राम कह आवत नाहीं' ॥
(तुलसीदास जी)

लेकिन जिसने प्रेम से अपने आपे को प्रियतम के समर्पित कर दिया उसे कोई कठिनाई नहीं होती और मालिक साक्षात् उसको अपने अंग लगा लेते है। उन्हीं की दया से हमें किसी तरह की रुकावट नहीं होती। लोग कहते हैं कि हम मालिक को मिलने चले है। वह मालिक कौन है जिसे मिलने चले हो? वह मालिक न तो ईण्ट-पत्थर है, न वह पेड़-पौधा है, न वह कोई जानवर हो है। वह तो मनुष्यों के अन्दर चेतन स्वरूप है और सन्त में वह आत्म-चेतना होकर रहता है। वह परम तत्व सर्वाधार सर्वव्यापक है। अगर आप एक बार उसके चरण को पकड़ लोगे तो आपके रास्ते में किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती।

एक स्त्री थी। उसने अपने जीवन में कोई शुभ कार्य नहीं किया था। केवल एक बार उसने एक गाय को गाजर खिलाया था। मरने के बाद जब वह धर्मराज के दरबार में गई तो धर्मराज ने उसे कहा— "माई, यद्यपि तूने धर्म का काम तो नहीं किया है। तथापि तूने एक बार एक गाय को गाजर खिलाया था। इसी शुभ कर्म के प्रताप से तुझे कुछ काल के लिए स्वर्ग भेजा

जाता है।" वह बुढ़िया उस गाजर के सहारे स्वर्ग की ओर उड़ चली। नीचे उस वुढ़िया का पाँव पकड़े कई आदमियों की शृंखला उसके सहारे स्वर्ग की ओर उड़ चले। बुढ़िया की दृष्टि जब नीचे की तरफ गई और पैर से लटके हुए आदमियों की कतार देखी तो वह चिल्ला पड़ी— "यह गाजर तो मेरी है।" ज्योंही उसके मन में "मोर-तोर" का भाव आया, वह बुढ़िया नीचे को गिरी और उसके साथ ही उसका पांव पकड़े हुए सारे लोग भो नीचे को गिर पड़े। और कोई भी स्वर्ग को नहीं पहुंचा। तो अमर आपको निज धाम जाना है, तो उसके लिए कौन सा उपाय है ? एक ही उपाय है—

'पकड़ चरन तू निज घर जावे,
काल करम पामाल री।
कोई कदर न जाने,
सत्गुरु परमदयाल री॥'

यह शब्द दातादयाल जी महाराज ने परमदयाल जी महाराज को सम्बोधित करके लिखा है। और उन्हीं को यह 'परमदयाल' का नाम बख्शा था। दुःख की बात है कि परमदयाल जी महाराज के चोला छोड़ने के बाद सभी परमदयाल बन गए। यह बहुत गलत है। तो—

'सतगुरु परमदयाल री कोई कदर न जाने'।

सद्गुरु तो है ही परमदयाल। मगर दुःख की बात तो यह है कि जो कुछ परमदयाल सद्गुरु जीवों को देना चाहते हैं, उसको लेने वाला कोई नहीं है। परमदयाल जी महाराज ने कई बार कहा— "मैंने खोटे कर्म किए थे। जो मुझे यह सयापा पीटना पड़ा। मैंने गुरु का काम तो किया लेकिन गुरु नहीं बना। असली गुरु तो मालिक ही है। वे सबके अन्तर में है। यदि आप अपने आपको उसके सुपुर्द कर दें तो कोई और दूसरा काम निज धाम जाने के लिए नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि सद्गुरु तो परमदयाल होता हैं। दयाल तो वह है जो किसी की प्रार्थना पर दया करता है। लेकिन परमदयाल वह होता है जो बिना किसी के मांगे, बिना किसी एवज के ही सब पर दया करता है। परमदयाल जी महाराज ने इस बात को बड़े स्पष्ट और आसान भाषा मे समझाया है। अब लोग कहते हैं कि गुरु कुछ नहीं करता। लोगों का अपना ही विश्वास और प्रेम होता है, जो काम बन जाता है। लेकिन परमदयाल जी महाराज ने स्वयं मुझे समझाया था कि यदि मैं सत्संगियों के साथ ऐसा करूंगा तो उसका नतीजा यह होगा, और यदि वैसा करूंगा तो उसका नतीजा बिल्कुल दूसरा होगा। इससे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि सद्गुरु के दया करने के खास-खास तरीके होते हैं जिनको

अजनाकर वह सत्संगियों का भला करता है। गुरु तो संसार में अनेक होते हैं, मगर सद्गुरु कोई एक होता है। सद्गुरु वह है जो सत् में ठहरा हुआ होता है। इस मिथ्या जगत् में रहते हुए भी वह सत् में रहता है। सद्गुरु का कभी विनाश नहीं होता, ना ही वह जनमता और मरता है। और ना ही उसके भक्त का कभी नाश होता है। गुरु-भक्त हमेशा अमर रहता है—

परित्राणाय साधुनां,
विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय,
सम्भवामि युगे युगे॥

साधुओं की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए मैं हर एक युग में अवतार लेता हूं। इतना ही नहीं बल्कि आगे चलकर भगवान ने कहा है—

'अभिचेत्सु दुराचारी,
भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः,
सम्यंग्व्यवसितों हि सः॥

अर्थात्, चाहे कोई कितना भी दुष्ट-दुराचारी न हो, किन्तु जिसका मन टिका हुआ हो, उसको साधु ही मानना चाहिए। और आगे चलकर कहा है—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा,
शाश्वच्छान्ति अधिगच्छति ॥'

अर्थात् वह एक क्षणमात्र में धर्मात्मा हो जाता है और परम शान्ति को प्राप्त होता है।

'कौन्तेय प्रति जानीहि,
न मे भक्ता: प्रणश्यति।'

हे अर्जुन! तू अपने मन में धारण कर ले कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। और उसका लोक-परलोक दोनों ही बन जाते हैं।

उन्होंने कई मिसालें दी हैं। एक बार पार्वती माता ने भगवान् शिव से कहा कि— महाराज! आप मुझे जरा अपने भक्तों का दर्शन तो कराइये! आपके भक्तों के दर्शन से ही मुक्ति मिल जाती है। तो शिव पार्वती भिखारी के भेष में पृथ्वी लोक में आए। काशी नगरी में एक बड़ा सेठ अपनी हवेली के बाहर बैठा था। कई मुनीम, नौकर-चाकर काम में लगे हुए थे। पानी से भरे हुए मटके एक तरफ रखे हुए थे। भिखारी के भेष में शिवजी ने सेठ से कहा— 'मुझे प्यास लगी है, पानी पिला दो'। सेठ ने समझा कोई चोर उच्चका है और बोला— 'भाग जाओ यहां से। यहां पानी नहीं मिलता'। चलते-चलते शिवजी ने कहा— 'अच्छा सेठ,

"तू फले-फूले" कुछ दूर आगे गए तो एक कुटी के सामने एक साधु बैठा था और 'शिव-शिव' जप रहा था। शिव-पार्वती वहां पहुंचे तो शिवजी बोले— "भक्त पानी पिला दो। बड़ी प्यास लगी है।" साधु ने उन्हें बड़े सत्कार सहित बिठाया ओर अपनी छोटी सी एक गाय को दोहन कर दो गिलास ताजा दूध उन्हें पिलाया। दूध पी कर जब शिवजी चलने लगे तो बोले— "तेरी गाय मर जाए"। पार्वती जी बोलीं— "भगवन् ! यह सब आपकी क्या लीला है ? जिस दुष्ट ने आपको अपमानित किया उसको तो आपने समृद्ध होने का वरदान दिया, और जिसने आपको सम्मान सहित दूध पिलाया, उसे उसकी गाय मर जाने का अभिशाप दे डाला। यह सब क्या रहस्या है ?" शिवजी बोले— "पार्वती बात तो यह है कि जिस सेठ ने मुझे गाली दी, उसका मन अभी सांसारिकता में फंसा हुआ है। उसे मेरी भक्ति नहीं चाहिए। इसलिए वह और माया में फंसेगा, तब उसे समझ आवेगी। लेकिन यह भक्त तो मोह-माया सर्वस्व त्याग चुका है। बस केवल एक गाय है जिसमें उसका मन अटका हुआ है। गाय मरी नहीं कि वह मेरे धाम को आ जाएगा"।

इस प्रकार मुक्ति का रास्ता तो आसान और सहिज है। पर लोग इस सहिज राह पर चलना नहीं चाहते। लोगों को तो ऐसा गुरु पसन्द है जो उन्हें कठिन कम-काण्ड

मैं उलझाकर उन्हें अच्छी तरह मूड़ ले। सच्चाई के ग्राहक संसार में बहुत कम हैं।

सांच कहूं तो कोई न माने,
झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुःखिया,
जिन यह राह चलाई हो।।

आज जमाना ही ऐसा है कि असलियत के चाहने वाले कमतर हैं और जब तक असलियत की चाह नहीं पैदा होती, तब तक मनुष्य चाहे जितनी कोशिशें कर ले, अभ्यास कर ले, प्रकाश देख ले और सारे शब्द सुन ले। लेकिन इन सबके बावजूद भी उसे मुक्ति नहीं मिल सकती! नहीं मिल सकती!! नहीं मिल सकती!!! जब तक आपका मन शुद्ध-साफ नहीं होता, जब तक साधन अभ्यास का कोई फायदा नहीं हो सकता। यही आज के शब्द का सार है, यही असलियत है कि आप पहले अपने मन को स्थिर करो, मन को ठहराओ और यही है सहज मार्ग, सरल युक्ति। अपने आपको अपने आप में ठहराओ। भगवान् कृष्ण जी ने अर्जुन को यही उपदेश दिया—

'सवधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं च।
अहं त्वाँ सर्वपपिभ्यो मोक्षायिष्यामि मा शुचः।।

"हे अर्जुन, तू सारे कर्मों को त्याग कर केवल

मेरी शरण में आजा। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। तू किसी प्रकार की चिन्ता मत कर"। इतनी पूरी तरह गारण्टी देने के बावजूद भी लोग कभी शक्ति की पूजा, कभी देवी की पूजा, कभी लक्ष्मी की पूजा करते रहते हैं। हजारों-लाखों रुपए खर्च करके जागरण करते हैं। ऐसे जागरण से क्या लाभ जो आपकी असलियत की तरफ से आंखें बन्द कर दें। सच्चा जागरण तो वह है जो आपको अन्दर से जगा दे। असली जागरण तो आपके अन्दर हैं। अगर अन्दर का जागरण हो जाए तो दुनियां की कोई ताकत आपके रास्ते में रुकावट नहीं डाल सकती। यही अध्यात्म का सार तत्व है। जिसको समझाने के लिए परमदयाल जी महाराज ने यह मानवता मन्दिर का सच्चा डेरा चलाया ताकि इस एक स्थान पर बैठकर लोगों को सच्ची शान्ति और कल्याण के मार्ग का सच्चा ज्ञान मिले। और परमदयाल जी के इस सच्चे डेरे में बैठकर आज भी लोगों को सच्ची शान्ति मिलती है। मैं अपने गुरु की कोई गुड्डी नहीं चढ़ा रहा। उनकी गुड्डी तो पहले से ही चढ़ी हुई है और जगत् विख्यात है। दो वर्ष पूर्व अमरीका से कोई पच्चीस अमरीकी यहां आए थे। सत्संग के बाद मैंने उन्हें परमदयाल जी महाराज के उस छोटे से कमरे में बिठाया। तो उन सबकी गहरी समाधि लग गई। जब उनके जाने का समय हुआ, और सबको डिलक्स बस में बैठाया गया तो उनमें से एक आदमी कम था।

सबको चिन्ता हुई कि उनका एक साथी कहां है? जब खोजाई मची तो वह अमरीकी परमदयाल जी महाराज के उसी कमरे में ही गहरी समाधि की अवस्था में बैठा था। जब उसे उठाया गया तो वह कहने लगा— "मुझे तो यहीं रहना है"। वह वहां से उठने को तैयार ही नहीं था।

यदि आप मेरे इन शब्दों को समझ लो और अपनी सारी चिन्तायें-फिक्र मुझे समर्पित कर दो तो आपकी सारी बाधाएं अपने आप दूर हो जायेंगी, और आपको सब कुछ प्राप्त हो जाएगा। अगर आप मालिक पर विश्वास रखते हो और—

यो मां पश्यति सर्वत्र,
सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि,
स च मे न प्रणश्यति॥

जो मुझे सब जगह देखता है, और सबको मेरे में देखता है, उससे मैं कभी अलग नहीं होता, और वह मेरे से कभी अलग नहीं होता। कोई हर्ज नहीं अगर आप देवी-देवताओं के मन्दिर जाते हो, मगर आपकी दृष्टि ऐसी होनी चाहिए कि आपको सिवा अपने इष्ट देव के और कोई दूसरा दिखे ही नहीं।

यह अपना नारायण दास बैठा है, जो अपना कोयले का व्यापार करता था। इसकी आढ़त पर इन्स्पेक्टर आया

और रिश्वत माँगी । नारायण दास ने कहा— "मैं रिश्वत नहीं देता ।" इन्स्पेक्टर ने नारायण दास पर झूठा मुकद्दमा दायर कर दिया। अदालत में अर्जी दे दी कि नारायण दास मुझे रिश्वत देकर गलत काम कराना चाहता है। नारायण दास जब समन आने पर अदालत गया तो उन्होंने क्या देखा कि मजिस्ट्रेट की जगह परमदयाल जी महाराज बैठे हैं, और परमदयाल जी महाराज ही वकील के रूप में जिरह कर रहे हैं। वकील ने इनसे कुछ जिरह करना चाहा तो मजिस्ट्रेट ने उसे रोक दिया और स्वयं ही नारायण दास से सीधा प्रश्न पूछने लगा— "नारायण दास, क्या, मजिस्ट्रेट ने तुमसे रिश्वत मांगी थी ?" नारायण दास हक्का-बक्का होकर खड़ा रहा । मजिस्ट्रेट ये स्वयं सारा बयान नारायणदास के हक में लिखकर उन्हें मुकद्दमे से बरी कर दिया।

तो आपको कुछ और नहीं करना है। केवल अपने आपको सद्गुरु के समर्पण कर दो। मुश्किल तो यह है कि आप अपने को सद्गुरु के समर्पण करते ही नहीं। आप अपनी चिन्ता और मुसीबतें भी सद्गुरु को नहीं देते। लोग मुसीबतों को भी छोड़ना नहीं चाहते, बल्कि उसमें ही एक तरह का स्वाद लेते हैं। जब तक आप अपने आपे को पूरी तरह जीवित सद्गुरु वक्त के समपण नहीं कर दोगे, तब तक आपका कोई काम बनने वाला नहीं है । परमदयाल जी महाराज ने स्पष्ट शब्दों में

कह दिया है कि आप खुले दिल से यहा आओ और सच्ची बात को सुनो-समझो और गुनो। और अगर आपको मेरी बात में कोई गलती दिखाई दे तो मुझको बताओ। लेकिन परमदयाल जो महाराज को शिक्षा में, उनके उपदेश के वचनों में कोई गलती न है और न हो सकती है। यदि आप सच्चाई से इस सच्चे रास्ते पर चलोगे तो आप भी गलती से बच जाओगे और आपका लोक-परलोक दोनों सफल होगा।

मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आपका शरीर स्वस्थ रहे, आपका मन चिन्ता-रहित रहे, आपकी आत्मा आनन्दित रहे और आपकी सुरत परमानन्द को प्राप्त हो। इन शब्दों के साथ मैं आज का सत्संग समाप्त करता हूं।

॥ सबको राधास्वामी ॥

गरुड़ पुराण रहस्य

तृतीय भाग

गरुड़ पुराण पर प्रश्नोत्तर

परम संत परम दयाल
पंडित फकीर चन्द जी महाराज
पांचवां सत्संग
(हनम कुण्डा 20-1-64)

(गतांक से आगे)

ज्ञान के अवतार दाता दयाल (महर्षि शिव) का एक शब्द जिसमें उन्होंने अन्तिम अवस्था का वर्णन किया है। सुनो—

न अपना नाम रखना तुम,
न दुनियां में निशां रखना ॥
'नहीं' की जब गई आदत,
जुबां पर तब न 'हां' रखना ॥
मुकिर होना अबस है और,
मुनकिर होना है गलती ॥

न सिर में ऐसे सौदा कर,
कभी बारे गिरां रखना ॥
न साहिबे दिल न बे दिल बनने,
की तुम में हबस आये ॥
न दिल देना न दिल लेना,
न वहमे दिल सितां रखना ॥
अगर है तर्क कर दो,
तर्क का भी तर्क बेशुभा ॥
मकां जब छुट गया,
फिर क्यों खयाले लाभकां रखना ॥
खमोशी मानये दारद,
कि दर गुफ्तन नमी आयद ॥
न सच ओर झूठ कहने के लिए,
मुंह में जुबां रखना ॥

सिद्धान्त तो यही कहता है कि मैं चुप कर जाता। यदि चुप कर जाता हूं तो उस शुद्ध स्वरूप का जिसने यह ख्याल दिया उसका ऋण नहीं उतार सकता। इसलिए त्रिवश घसीटा जा रहा हूं। देखो! दाता दयाल के इस शब्द से प्रगट हो रहा है कि वह अपना नाम व निशां भी रखना नहीं चाहते थे। एक ओर यह भाव है दूसरी ओर गुरुओं की यह दशा है कि वे अपने नाम का ढिंढोरा पिटवाते हैं और अपने-अपने पन्थ और सम्प्रदायों के पक्ष में हैं। इससे जो मानव जाति एक थी,

वह सम्प्रदायों में बंट गई। भाई भाई के साथ नहीं बैठ सकता। एक पन्थ वाला दूसरे का विरोधी बना है। मैं किसी पन्थ या सम्प्रदाय का विरोधी नहीं हूं। मेरे जिम्मे जगत कल्याण की ड्यूटी थी इसलिए यह काम कर रहा हूं। यह बातें समझदार वर्ग में जायगी, इसलिए सच्चाई का वर्णन कर रहा हूं।

गिदड़वाहे में दाता दयाल (महर्षि शिव) से मैंने कहा था कि— महाराज आपका यह चोला अब नहीं रहेगा। उन्होंने उत्तर दिया था कि फकीर! मेरे कर्म कट गये। तुम्हारे कर्म बाकी हैं वह भी कट जायेंगे। जब तक हो सत्संग का काम करते रहना। मैंने उस समय इस काम के करने से इन्कार किया था। तब उन्होंने कहा था कि— तू कौन है जो न करेगा। मौज ने मेरी सेवा के लिए तुझे मेरे पास भेजा था। तेरी जो कमी है वह दूर हो जायगी।

शुभ और अशुभ कर्म

मेरी कमी अब दूर हो गई। यह काम मैंने अपने लिए किया। इससे यदि दूसरों को लाभ पहुंचे जो पहुंचना चाहिए तो इसमें मेरा क्या श्रेय है? जुलाहा अपने पेट के लिये कपड़ा बुनता है। उसको दुकानदार खरीद कर बेचता है और लाभ उठाता है। दर्जी उसकी

सिलाई करता है। धोबी धोता है। फट जाने पर उसे कारखाने वाले खरीद कर कागज बनाते हैं। काम एक आदमी ने अपने पेट को किया मगर उसके कर्म से दूसरों को लाभ पहुंच गया। इसी तरह हर एक आदमी काम करता है अपने लिए मगर परिणाम यह होता है कि दूसरों को लाभ पहुंच जाता है। यदि आपने अपने कल्याण के लिए काम किया तो दूसरों का भी कल्याण होगा। कारखाने वाले काम करते हैं अपने मुनाफा को, मगर उसमें लाखों रोटी कमाते हैं। यदि वह काम अपने लिए हानिकर है तो दूसरों को भी हानिकर होगा। इसी तरह मेरा काम अपने लिए है मगर मुझे यकीन है कि हजारों को इससे लाभ होगा।

वह जो भ्रम से निकलना चाहते हैं अथवा आवागवन से बचना चाहते है उनको कह रहा हैं कि आवागवन से बचने को शब्द और प्रकाश का साधन है। यमराज से बचने को सुमरिन ध्यान है। इसके आगे और भी मञ्जिलें हैं।

जब तक तुम्हारा शरीर हे तुम साधन करके शब्द और प्रकाश में रह सकते हो। मगर जब तक शरीर है 24 घण्टे वहां नहीं रह सकते। मैं भी नहीं रहता। कोई भा नहीं रहा। उदाहरण के लिए दातादयाल (महर्षि शिव) यदि हर समय शब्द और प्रकाश में रहते तो पुस्तकें कैसे लिख सकते थे। बड़े-बड़े सन्त हुए, सत्गुरु कहलाये मगर वे भी 24 घण्टे शब्द और प्रकाश में नहीं रहे। यदि वे 24 घण्टे शब्द और प्रकाश में रहते तो कैसे सत्संग कराते, कैसे ग्रन्थ लिखते आदि-आदि।

अन्तर में भिन्न-भिन्न शब्द होने का कारण

कितने ही सत्संगी ऐसे है कि जिनका अभ्यास बहुत ऊञ्चा है मगर चूंकि उनका भ्रम नहीं गया है। इसलिए उत्थान होने पर घबराते हैं कि वृत्ति वहां से उखड़ गई। यह मेरा अनुभव है क्योंकि मेरे साथ बीती है। कभी समय था जब घण्टा, शंख, रारंग, सारंग, बीन आदि के शब्द सुने। तरह-तरह के प्रकाश देखे। अब पिछली अवस्था है। अब लाख कोशिश करने पर भी घण्टा शंख आदि के शब्द सुनाई नहीं देते। अब क्या होता है— श्वेत प्रकाश और अखण्ड Unbreak-able) शब्द। चूंकि राधास्वामी नाम का सुमिरन किया हुआ है तो अब जो शब्द सुनता हूं और उस ओर ध्यान देता हूं तो वह ध्वनि राधास्वामी मालूम होती है। यह अभ्यास के अमली अनुभव हैं। मैंने सन्तमत की अ, ई पढ़ने की कोशिश की मगर नहीं पढ़ सका। मैं यह भाषण देने जा रहा हूं। यह प्रकाशित होंगे। पाठक पढ़ के कहें कि मैं ठीक हूं या गलत हूं। बड़े-बड़े गुरु अपने-अपने अन्तरीय अनुभव के आधार पर या तो समर्थन करें या गलत हूं तो खण्डन करें।

अन्तर में भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द होते हैं जिनको साधन करने वाले जानते हैं। वह क्यों होते हैं इस पर किसी सन्त ने प्रकाश नहीं डाला है। इनकी व्याख्या मैंने पहिले भी की है जो 'मनुष्य बनो' अक्टूबर 1962 में व 'शिव पत्र' के 'सार का सार भाग दायम्' पुस्तक में प्रकाशित हो चुकी है मगर अन्तरीय शब्द होने के विषय के सिलसिले में वहां भी संकेत किये देता हूं।

घण्टा, शंख, मृदंग की आवाजें प्राकृतिक आवाजें हैं। जब चित्त वृत्ति को इकट्ठा करते समय साधन करने वाले के अनाविष्कृत मन (Sub-Conscious Mind) में सांसारिक पदार्थों की वासनायें होती हैं तो वृत्ति के इकट्ठा करने में शरीर के स्थूल पदार्थों में गति होती है और उससे जो आवाज या शब्द होता है वह घण्टा या शंख के शब्द के समान होता है।

जिसके मन में वासनायें नहीं रहती उनके अन्तर में घण्टा शंख कैसे बज सकता है? 'ओ३म्' का शब्द त्रिकुटी के स्थान पर होता है। सन्त मत में वहां गुरु मूरति का ध्यान होता है। उस समय प्रेम की लगन लगी होती है और विचार जो सूक्ष्म पदार्थ हैं अन्तर में इकट्ठे होते हैं तो ओ३म् या मृदंग की ध्वनि सुनाई देती है जिस तरह कि बादल इकट्ठे होकर गर्ज खाते हैं।

जब मानसिक प्रेम खतम हो गया तब फिर यह ध्वनि सुनाई नहीं देगी। जब पहिली श्रेणो के शब्द मेरे अन्तर में प्रकट न हुए तो मुझे शङ्का होने लगी कि इतना अभ्यास किया फिर भी तू गिर गया। यह मेरा भ्रम था, क्योंकि अब मुझे दोनों अवस्थाओं का अनुभव है। चूंकि मेरी स्थिति पहिली जैसी नहीं है। इसलिए निचली श्रेणी के शब्दों का होना स्वाभाविक है।

कितने ही सत्संगियों को शिकायत है कि अभ्यास नहीं बनता। उनको बताता हूं कि जैसे-जैसे बाह्य प्रभाव तुम्हारे विचारों के अनुसार तुम्हारे अनाविष्कृत मन

(Sub-Conscious Mind) पर पड़े हैं, वह वहां मौजूद रहते हैं। इसलिए जैसी वासना होगी वैसा शब्द होगा। जब ऐसी अवस्था हो तो घबराना नहीं चाहिए। जब तक तुम मन की वासनाओं, कामनाओं, से परे नहीं होते तब तक अभ्यास में समता एक रसपना कभी नहीं रहेगा। इस समता को लाने का इलाज यह है कि विचार के साथ विचारों को द्ध करने को कोशिश करो और मूल कारण को ज्ञात करो, जिसके कारण अभ्यास नहीं बन रहा है। यह अच्छी तरह समझ लो कि तुम्हारा अभ्यास तुम्हारे भाव और विचारों के अनुसार बनेगा। दाता दयाल ने मेरे नाम एक शब्द लिखा था—

तू फकीर है मेरे प्यारे, सुन फकीर की बानी।
... ... —॥
मोह मया और छल चतुराई, छोड़ें मूल विकारा।
... ...॥

(फकीर भजनावली से)

इस शब्द में उन्होंने 'मोह' मया और छल चतुराई, 'छोड़ें मूल विकारा' लिखा है। यदि मैं अपने धन, धाम और मान को, जो लोग मुझे देते हैं, उनकी हां में हां मिलाता हूं और चुप हो जाता हूं तो छल चतुराई से कैसे बचता हूं?

मैंने सच्चाई को प्रकट किया है। अपनी रिसर्च के बाद यह अनुभव किया है कि भारत का संकट जब दूर

होगा जब भारत सन्तों की शरण लेगा। शरण लेने का अर्थ मत्थे टेकना नहीं किन्तु शरण का अर्थ यह है कि जो उनका कथन है उस पर विचार करके उसके अनुसार चला जाय या अमल किया जाय। सुनो ! तुम सांसारिक पदार्थ चाहते हो और इसके लिए तुम देवी-देवता, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, हजरत मुहम्मद को मानते हो। तुम मानते हो, मानो, मानते रहो मगर मैंने सच्चाई वर्णन कर दी है कि यह सब देवी देवता, पीर-पैगम्बर तुम्हारा मन है। तुम मन से ही तो उनको मानते हो। यह तुम्हारा विश्वास है। इसलिए ए मानव ! तेरा सहायक तेरा मन है। तू व्यर्थ अपने तो अलग अलग सम्प्रदाय वाला मान कर तू व्यर्थ वितण्डावाद में फंस गया है और तूने अपने भाइयों के साथ घृणा और द्वेष का बीज बो दिया है। कहां वह अजर अमर को मानने वाला सनातन धर्म और कहां लामकां का मानने वाला स्लाम ! फिर भी घृणा द्वेष का व्यवहार ! भारत के बटवारे के समय हिन्दू और मुसलमानों ने एक दूसरे के साथ जैसा घृणित व्यवहार किया इसको सब जानते हैं।

लोग उपासना करते हैं। मन से भक्ति करते हैं। ईश्वर को मन से मानते हैं। ईश्वर विराट पुरुष है, तो जो अपने इष्ट को कर्त्ता पुरुष मानते हैं वे 84 के चक्र से निकल नहीं सकते। ऊपर के लोकों में नहीं जा सकते। सन्तों ने इसे काल कहा है। सन्त मार्ग में काल को इष्ट नहीं माना किन्तु इससे ऊंचा माना है। गुरु नानक

ने उसे अकाल कहा। कबीर ने उसे अनामी पद कहा। राधास्वामी ख्याल ने सत से आगे अलख अगम से आगे कहा। हिन्दुओं ने कहा कि— ओ३म् भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् ·····। अर्थात् सत्यम् के आगे सावित्री रूपी सूर्य के दर्शन करो। फिर इनमें अन्तर क्या रहा। जहाँ हिन्दू भूले वहां राधास्वामी मत वाले भी भूले। जब साधन करता हुआ मनुष्य इष्ट पद पर पहुंच जाता है तो वह यह समझता है कि दुनियां प्रकृति का खेल है। स्वप्न है। ऐसे पुरुष को कहते हैं विदेह गति वाला। यही बात हिन्दू शास्त्र कहते हैं। यही कबीर कहता है— इस पर कबीर साहब का शब्द है—

बलिहारी अपने साहिब की,
जिन यह जुक्ति बनाई।
उनकी शोभा केहि विधि कहिये,
मो से कहि न जाई॥ 1॥
बिना जोत की जहं उजियारी,
सो दरसै वह दीपा।
निरतैं हंस करैं कोतूहल,
वोही पुरुष समीपा॥ 2॥
झलकै पद्म नाना विधि वानी,
माथे छत्र विराजै।
कोटिन भानु चन्द्र की क्रान्ती,
रोम रोम में छाजै॥ 3॥

कर गहि विहंसि जवै, मुख बोले,
तब हंसा सुख पावै।
अंस बंस जिन बूझि विचारी,
सो जीवन मुक्तावै ॥ 4 ॥

चौदह लोक वेद का मण्डल,
तहं लगि काल दुहाई।
लोक वेद जिन फन्दा काटी,
ते वह लोक सिधाई ॥ 5 ॥

सात सिकारी चौदह पारिन्द,
भिन्न भिन्न निरतावै।
चार अंश जिन समुझि विचारी,
सो जीवन मुक्तावै ॥ 6 ॥

चौदह लोक बसै जम चौदह,
तहं लगि काल पसारा।
ताके आगे जोति निरञ्जन,
बैठे सून्य मंझारा ॥ 7 ॥

सोरह खण्ड अक्षर भगवाना,
जिन यह सृष्टि उपाई।
अक्षर कला से सृष्टि उपजी,
उनहीं मांहि समाई ॥ 8 ॥

सत्रह संख पै अधर द्वीप जहं,
सब्दातीत बिराजै।
निरतै संखी बहु विधि शोभा,
अनहद बाजा बाजै ॥ 9 ॥

ताके ऊपर परम धाम है,
मरम न कोऊ पाया।

जो हम कहीं नहीं कोऊ मानै,
ना कोऊ दूसर आया ॥10॥
वेदन साखी सब जिव अरुझे,
परम धाम ठहराया।
फिर फिर भटके आप चतुर होइ,
वह घर काहु न पाया ॥11॥
जो कोइ होइ सत्य का किनका,
सो हम को पतियाई।
और न मिले कोटि कहि थाके,
बहुरि काल घर जाई ॥12॥
सोरह संख के आगे समरथ,
जिन जग मोहिं पठाया।
कहै कबीर आदि की बानी,
वेद भेद नहिं पाया ॥13॥

यह गति तुमको तब मिलेगी जब सच्ची समझ आ जायगी। अर्थात् पूर्ण जान (अनुभव ज्ञान) हो जायगा। जैसा कि मैंने अभी बताया कि सब साधन करके एक ही मञ्जिल पर पहुचे और इनमें कोई अन्तर नहीं रहा मगर हर एक अपने-अपने पन्थ या सम्प्रदाय को श्रेय (**Credit**) देता है । उनकों अपने पन्थ या सम्प्रदाय की टेक है, चाहे प्रत्यक्ष में चाहे अप्रत्यक्ष (पर्दे) में मगर टेक केवल सतगुरु की होनी चाहियें। सतगुरु बाबा फकीर की नहीं । वह है सच्चा ज्ञान, सच्चा अनुभव। इसलिए मैं सतगुरु की हैसियत में प्रगट हुआ हूं

और यथार्थ बात या सच्चाई वर्णन किये जाता हूं। तुम चाहो मुझे अहकारी कहो मगर मैं कोई बात अहंकार से नहीं कहता किन्तु अनुभव करने के बाद कह रहा हूं। यदि दाता दयाल (महर्षि शिव) के कथनानुसार मैं जगत कल्याण को आया हूं तो मैं आशा करता हूं कि मेरे विचार ब्रह्माण्ड में जायेंगे और बड़े-बड़े दिमागों को प्रभावित करेंगे।

इसलिए मैं कहता हूं कि तुम न हिन्दू बनो, न मुसलमान, न ईसाई, न सिक्ख, केवल इन्सान बनो। कहने का अभिप्राय यह कि हर एक को अपना जैसा समझकर इन्सानियत का व्यहार करो।

हमको देखना यह है कि जीवन का ध्येय क्या है? जैसा कि मैं पहिले बता चुका हूं कि हम दुनियां में आये हैं और इस मन के चक्र में फंस गये हैं। अनेक प्रकार से फंसे हुए हैं। एक ही बन्धन नहीं है। हजारों ही बन्धन हैं। धर्म का, ईश्वर का, पुत्र का, स्त्री का, धन का, नातेदारों का, परिवार का आदि-आदि। खुदा का मानने वाला ईश्वर के मानने वाले से विरोध करता है। ईश्वर का उपासक खुदा के मानने बाले से घृणा करता है। हर एक अपने-अपने सम्प्रदाय के बन्धन में है।

इससे निकलने के लिए साधन और सत्संग है मगर अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। हुजूर महाराज (राय सालिग राम साहब) ने कहा है कि 100 वर्ष की पूजा से ढाई घड़ी का, सत्संग बेहतर है। बाबा सावनसिंह जी

भी यही कहा करते थे। तुलसीदास और कबीर ने भी ऐसा ही कहा है।

इसलिए जिन्होंने इस बात को जीवन भर परिश्रम के बाद प्राप्त किया है उनके अनुभव से लाभ उठाओ। व्यर्थ क्यों कष्ट उठाते हो मगर जो वस्तु मुफ्त में मिलती है उसकी कोई कदर नहीं करता। इस सिलसिले में मुझे एक कहावत याद आ गई कि कोई नौजवान अपनी सुसराल गया था। उसके जूते मामूली थे मगर रूमाल रेशमी था। जब वह सुसराल पहुंचा तो जूतों को रेशमी रूमाल से साफ करने लगा। लोगों ने बड़े अचम्भे से पूछा कि रेशमी रूमाल को क्यों खराब करते हो। तो उसने कहा कि यह रूमाल पिताजी की कमाई का हैं और जूते मेरी कमाई के हैं। यह कहावत चाहे ठीक हो या न हो, मगर शिक्षाप्रद है कि मुफ्त को वस्तु की कदर नहीं की जाती। मैंने मर-मर के जो अनुभव किया है वह मैं मुफ्त में बांट रहा हूं। लोग उसे लेना नहीं चाहते। तमाशा देखने आते हैं, इसलिए जो कहता हूं उसे सुनो और उससे लाभ उठाओ।

जब तक जीवन है मौज अधीन रहकर काम करते रहो। खेल खेलना है खेलते रहो। सत्संग करते रहो। अभ्यास के बारे में अधिक नहीं करना है। मन को शुद्ध करना है। कहा है—

'मन का हुजरा साफ कर,
जानां के आने के लिए

जहां मन शुद्ध हुआ, विचारो में पवित्रता आई कि यह शब्द और प्रकाश स्वयं खुल जाते हैं। अभ्यास का गुरु यही है कि मन को शुद्ध करो। वासनाओं को अनुकूल बनाओ। जब तक यह नहीं होता, साधन पूरा नहीं हो सकता। यह मेरे जीवन का अनुभव है। शब्द और प्रकाश जो खुलते हैं यह सब मन की वासनाओं के अनुसार खुलते हैं क्योंकि शब्दों का खुलना स्वाभाविक है प्राकृतिक है। जैसी वासना होगी वैसा शब्द प्रगट होगा। जो मेरी समझ में आया निज अनुभव के आधार पर कह दिया। जो ड्यूटी दाता दयाल (महर्षि शिव) ने लगाई थी उसे पूरी कर चला। उस ऋण से उत्तीर्ण हो गया। प्रशंसा की खुशी नहीं। बुराई से घृणा नहीं। अब अन्तिम परिणाम मेरा क्या हो रहा है वह कबीर की बाणी से सुनो—

सखिया वा घर सबसे न्यारा,
जहं पूरन पुरुष हमारा ॥टेक॥
जहं नहिं सुख दुःख सांच झूठ नहिं,
पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज,
बिना जोति उज्जियारा ॥ 1 ॥
नहिं तहं ज्ञान ध्यान नहिं जप तप,
वेद कितेब न बानी ॥
करनी धरनी रहनी गहनी,
ये सब उहां हिरानी ॥ 2 ॥

धर नहिं अधर न वाहर भीतर,
पिण्ड ब्रह्माण्ड कछु नाहीं।
पांच तत्व गुन तीन नहीं तहं,
साखी सब्द न ताहीं ॥ 3 ॥
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा,
बिना वृक्ष फल सोहै।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं,
स्वासा लेख न कोहै ॥ 4 ॥
नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई,
नहिं सूक्षम अस्थूलं।
नहिं अक्षर नहिं अवगत भाई,
ये सब जग के भूलं ॥ 5 ॥
जहां पुरुष तहवां कछु नाहीं,
कहै कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई,
पावै पद निरवाना ॥ 6 ॥

॥ गरुड़ पुराण रहस्य समाप्त ॥

नारायण दास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड़ डोगरी,
बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा
हिमाचल प्रदेश।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

Monday, 10th February, 1997

MANAVTA MANDIR
HOSHIARPUR (Pb.), India.

DAYAL YOGA

PART I

The birth of a Saint

Data Dayal Maharishi Shivbrat Lal Varmanji Maharaj

was the manifestation of pure-spirit

It is truly said— "Mind meets mind". It really means one gets attracted to another. It is even so in the realm of spirit. It is the meeting of two minds that creats sense of unity. It is this unity which opens of flood gates of progress, in all spheres, material and spiritual. The mind (mentality) is the link that unites. It is a doubled edged sword. It works both ways unifies and diver-

sifies. The "Self" in man alone can check the mind. That is why the Saints have evoled Surt Shabd Yoga to know and realise the "Self". This self is called Atma, (Ruh, spirit curren, Soul, attention, Surt and Shabd). Its real name is spiritual consciousness or inner most voice of reason (consciousness). It is the life current. In the beginning there was the word (sound-shab) and the word was with God.

It is said the word (shabd) is never destroyed. All that is spoken remains (floating) in the atmosphere. Man has developed the Radio, Television, Wireless, X-Ray etc. To catch all that is said man has invented proper receiving gagets. He adjusts them to suit certain locations or centres. In the same way the spirit current of a divine personality is there in the atmosphere. A devotee attunes his body, mind and soul to listen to or receive it. When we explain the phase 'Bhajan' (known to yogis i. e., practioners of Surt Shabd Yogo), it may become possible for non-practioners to known something about this phenomena. Readers must be aware of telepathy. The word telepathy according

to lexicon means "communication of one mind with another by some means beyond what is ordinary or normal". The spiritualists my agree or refute this meaning. They define it as the spirit current or thought-cum-spirit current, Both the definitions seem correct. While we accept both the versions of the Lexicons and of the Spiritualists, we feel it actually represents divine inspiration or infusion. Those who are wise searchers of truth take full advantage. But those who are externalised, completely ignore it. Even those who ignore the telepathic waves or inspiration we call dhar i. e. spirit current become conscious afterwards. One can become infused of inspired by the practice of the three methods viz.—devotional yoga, Karma and Gnana Yoga. Perfect is he who attains and passes through the three by the aid of Karma Yoga. Karma (job) predominates as it is the foundation of spirituality, may it is the very basis of all things material and mental as well. Its chief instrument is the mind principle. Spiritualists say mind companions Yogis upto Sat Lok. Does it ? We say it remains till the last breath. But a Yogi masters it. Man without mind is not worth any thing.

In this space age, when man is aiming to land in other planets, moon mars and advancing rapidly towards many other achievements, it is not beyond his capacity to tap the word of a particular great Seer, Prophet or Saint. We have discussed this aspect at length in an other work. In the religious philosophies which cannot claim longer origin than 2000 years, there is reference to flying carpets. We see them flying in the skies to-day. The ancient recorded Epics of Ramayana and Mahabharata contain very many details, which couple of centuries or a century ago appeared fantastic or mythical. Many are in existence to-day. Look at the sciences of Telegraphy, wireless, Radiography, television, electricity, flying carpets of the skies-the planes, the atomic bombs, weapons etc., etc. These find mention in these works as gods (Agni, Inder, Vayu, Devtas, etc., Reference to Sudershan Chakra, Agni Ban etce., is unique. These poetic narratives were not the imagination of the Sage who wrote them. These were realities. Many a ruins have yielded enaugh data about ancient civilisation. Much more is there hidden in the mother earth and its layers

deep down. The Archeologist of tomorrow will be able to ascertain and affirm the truth. The weapons of to-day such as atomic, hydrogen, germ spreading bombs, the guided missiles, tarpedoes sub-marines atomic and otherwise etc., etc., found in allegorical poetic narratives, were no flight of imagination. Armies came from far off lands (Africa of to-day, West, North and North-West, Lanka and other islands) to take part in the most famous war of Kurukshetra. That war destroyed almost every thing Humanity to-day is heading for a much more serious war of destruction.

The intelligent reader is expected to know the honoured place these epics occupy in Hindu philosophy. The non-believer of yesterday has now more faith in them. Likewise the man who is not a parctioner of yoga or who is not a true and practical spiritualist cannot appreciate the phenomena of Dhar (spirit current). Wo do not expect nor do we desire to persuade, any one to accept the source of Dhar of the Divine man, which many in in the last 2400 years have experienced. It is also our practical experience of over four decades. But

the Gurudom of to-day has its own way of thinking. They know best. Some adepts of Santmat even showed annoyance, when we mentioned three Eminences known as Avayakrit, Hiranya Garbh and Virat forming the seat of TRI-KUTI called by the Saints as the seat of Onkar. It is the seat of Trinity, triads and triplicity of Nature. It represents the very heart of the Brahmand, the subtle universe within man and without. (Microcosm and macro-cosm within and without). An adept of Santmat grudgingly acknowledged the existence of "Virat" saying "Yes, there is Virat Pursha". What such people think is their own affair. Search for truth in Data Dayal's workr.

The readers can judge for themselves what force the Great Master was. He lived to be 79. He served all. He fulfilled every one's hopes and desires. He spent all his time in doing good to all, who went to him. He answered devotees corres-pondence personally. He never published their correspondence nor did he allow others to do so. To-day it is just the reverse. Bhai jee Maharaj replies evero epistle that he receives. He spends

his own money to do so. He has forbidden every one, not to send self addressed stamped envelopes etc. He have received letters (unsolicited or otherwisr) from other sources with crossed or scored out addresses or others. It is not permissible in Santmat.

Wheu any one accepts or undertakes a job, he must be honest enough to do it morally and spiritually. It is one of the cardinal principles of not only Santmat but of Manvata.

We find blind faith has created its own thraldom. No one seems to realise the truth. People rush to a healer who cannot heal himself. Many say what the Guru says is the only truth, some think they alone are the saviours of mankind, some proclaim they ate spreading now thought force, and some proclaim they are mesiahs. We do not belittle their self acquired role. We however ask them to tell us if they are free from selfis' ness ? If they are, then they are the Greats. If our statement is considered criticism, we have no hesitation to say "it is negation of Santmat. Santmat is

a devotional way to achieve happiness, peace and grace. Santmat's religious philosophy is the one, which gives freedom to its votaries to think for themselves. The two Saints who founded Nanak and Radhaswami Panth have said "know thyself by thyself, believe not in the words of other". The Great Guru Nanak Dev went beyond this. He said "Rely not upon the word of the Guru unless you have perceived the glory or intuitioned truth yourself". The Great Master freed his disciples.

Data Dayal was the chief attraction of the intelligentsia. They enjoyed and benefitted from his intellectual spiritual discourses. Many would flock round him and seek the truth He gave them satisfaction and solace according to their temperment and aptitude. We know we have repeated certain facts. Knowledge and search for truth is itself repetitive. It is only the constant recitation (in any human activity) i. e. repetition of certain phase which inculcates the doctrine (of Santmant) into the minds of hones seekers. But those, who are merely inquisitive (like the seasonal bird life which is

born with the season's crop and dies with it) remain void. Curiosity and inquisitiveness are the diseases of the chimerical mind and lead man no where. He remains dangling in between matter and spirit. Mind needs much more thought force to be curbed and checked as it is the most curious commodity.

Data Dayal had a very large following, more than any one in the country. They were spread all over the length and breadth of India. There were many in the Punjab, Sindh, Utter Pradesh, Central Province, Behar, Bengal, Bombay and Hyderabad Deccan. They numbered lakhs. There were some in foreign lands.

Data Dayal has written over 3000 books in Urdu, Hindi (prose and poems). Amongst these there are Kabir Yoga, Nanak Yoga, Radhaswami Yoga, Surt Shabd Yoga, Kalpadram, Panth Sandesh, Sant Sanyoga (Five Volumes). Bhagat Mal, Sant Mal, Vigian Vishishtain, Vigian Budhain, Vigian Santain, Vigian Krishnain, Vigian Ramayan, Panch-dishi, Maha-Ramain, Mahabharat, Geeta, Vishnu Puran, Kalki Puran, Sufi-ism, Anand Yoga, Sahaj

Yoga, Ashtang Yoga, Avdhut, Sant Amrit Bani, Shabda Yoga, Vedant, Sankheya and hundreds of books on Upnishds. In English there is Anand Yoga, Message of Peace, Entry into the kingdom of Heaven, and Light on the Light Path. There are other historical's in Hindi and Urdu. His works include many commentaries on religious books such a Balmik Ramayan, Tulsi Krit Ramayan and Bhagwat Geeta. There are many other works on Budhifm, Jainism, Islam, Hinduism, Sufi-ism, De-ism, and various other works on almost all religious philosophies. These works throw adequate light on each creed and falth. The written word therein keeps the finger tips on the pulsating question (point) of qu-st for True knowledge, Divinity and God".

Data Dayal's life sketch, by his Holiness Bhai jee Maharaj is most significant. It is in brief the complete picture of all that the Saint of the Century stood for. The Great Master has left behind him some thing priceless for posterity. It is not easy to translate what Bhai jee Maharaj has put into this little work. It Could be pushed into many volumes than a lay man can imagine. The first part is almost completed. But we ask our own self. Is it so ? The answer in a firm 'No'.

Before we get into the second part of this work (Dayal Yoga), we feel the readers would like further explanation of certain aspects that have been put into words in the foreign tongue.

Man often links his greatness in worldly affairs as the means to achieve independance. Experience and experiment in life proves it otherwise. It is not the greatness of man's means that makes him independent, so much as the smallness of his desires, needs and wants. In the Saints language one must not wish for every comfort and desire to lead an easy idle life of a do nothing. His needs must be limited, his desires must be of doing good to others and strict avoidance of injuring or harming others feelings. He must have good intentions. All good theories and resolutions are purposeless unless reduced to practice. Man must not only makes an honest effort to live by his own earnings, but see he succeeds under all circumstances. Man himself is the Creator of circumstances and enviornments. This one point Data Dayal inducted into us.

(CONTINUED)

SAT-SANG VIII

SAT SANATAN DHARMA
OR
SAT MANAV DHARMA

Param Sant Param Dayal
Pandit Faqir Chand ji Maharaj

INITIATION

UJJAIN 12-5-1968

This work of mine is like that of a weaver. who weaves primarily for his own livelihood. But his work has utility for many people. A shopkeeper sells the cloth woven by the weaver and earns profit thereon, the tailor stiches that cloth to earn his living. The washerman washes that cloth and makes his livelihood. When that same cloth is worn out, and becomes a useless piece, the paper

manufacturers carry it away for making paper out of it. The weaver does not do any favour to anybody. He is simply concerned with earning his own bread. Similarly, I am not doing any favour to anybody. I am only doing my duty.

I was a Sanatanist and believed in Lord Rama. I could never imagine that I will be initiated into the Radhaswami-Faith. After my initiation into the Radhaswami-Faith, I was not able to understand the books expounding this philosophy. So I determined that I will follow this Path sincerely, and then reveal to the world my own findings about this philosophy. So I am only reaping the fruit of my own vow. It possible that my work may prove useful for others, but I do not take any credit for it.

After birth, when a child grows in his power of understanding, he thinks of three things. Whatever he sees, he follows it, and tries to know it. While in the lap of his mother or father, he questions her or him about different things, their source and about their utility. When I grew in this Power of understanding, what I thought was, "What

is this world ? Who has created it ? And, From where has it come ?" So I spent my whole life trying to know the answers to these questions. My understanding, led me develope his faith, that there is a God or Rama. Then I determined to go out in search of Him. In His search I studied the writings of different religions and Saints and followed their writings or sayings in my practical a full faith in my mind, that there is a Supreme God.

After some time, I was told that He possesses a physical from. Then I accepted Him in the form of Ram or Krishan and worshipped Him. Lord Ram with his bow and arrows, used to stand before me for hours together, as you are now sitting. I used to talk with Him. In Ramayana, it is, written—

Ram incarnat is Himself, in various and varied forms
There are (therefore) Ramayanas by the thousand million in number

Due to this impression upon my mind, I had a desire to see Lord Ram in human form, and

serve Him and adore Him. Once a vision directed me to the Holy feet of Hazur Data Dayal Ji. I acknowledged Hazur Data Dayal Ji as Lord Ram. I worshipped, adored and served Him to the best of my capacity. He transformed my thoughts and initiated me into the Guru-Mat. Then I worshipped Him as my Guru and attained many miraculous Powers. In Basra-Bagdad, when I faced disastrous situations in the battle-field, my Lord Ram appeared to me in the form of Hazur Data Dayal Ji. He gave my necessary guidance, which I followed and escaped the enemy. When I reached the city of Bagdad, many of my fellow disciples met me, They seated me on a platform and worshipped me. I asked them "Hazur Maharaj Ji is at Lahore, why are you doing this ?" They said, "Master Ji, (They used to address me as Master Ji) you appeared to us at such and such place and helped us". When they told me this, I at once realised the reality of such manifestations. It confirmed my faith that these manifestations are nothing but a creation of man's own mind. It further confirmed my belief and convinced me that my own desires were accomlished because of my

own faith and belief. Because I had pledged to speak out my realisation to the world at large, so I proclaim hereby, **"O, man, you may worship the Supreme Being in any form you like, you would be looked after by him, as I was looked after, and my fellow disciples were looked after".**

Every body saw the form of the Lord,
According to his own feelings towards HIM.

I am not against any religion or philosophy. Every religion and religious philosophy is correct in its own sphere. But mind you, the Lord and Creator, who is the Mainstay of this entire Creation, is unique. Because, if I am all-in-all, I should be able to do whatever I like, but I cannot. After realising my limitations, I made a search for Him. When I peeped within myself, I realised that the inner forms, scenes and colours are only projections of my own mind. Thereafter I transcended to the regions of Light and WORD. I enjoyed the Bliss of the WORD (Shabd) but my

search for the Lord still persisted. If I say that the WORD (Shabd) is the Lord, then who is it that listen to the WORD (Shabd)? This point is very important to ponder over. Suppose Baba Faqir manifests himself within you, THAT manifestation of Baba Faqir is different, and you are different from it. Light manifests itself within you. You see that Light. You are different from it, whereas the Light is different from you. Similarly, you listen to the Continuous Sound of the WORD within you. That sound of the WORD is differeat whereas you (the listener) are different. Then, who is he who see the Light and listens to the WORD within? It is your real "Self". Your "Self" or "Surat" sees the Light and listens to the WORD, enjoys the scenes created by the mind and beholds Baba Faqir or the Guru within. Then who is the Real Lord within you? Your own "Surat". Your own "Self" is the witness within. Whatever, colours, forms, Light and WORD manifest within you, depend upon the constitution, composition and nature of your body. Your "Self" is not your body. You dwell in the body and you are the mainstay of

this body. Similarly, the mainstay of this Universe is the Supreme Lord, who is also the source of our "Self". The Supreme Lord is known by different names as Akal-Purush or Supreme Element.

Now, I always try to meet the Supreme Lord within my body. Because, I have known the SECRET, that the Light and WORD are within me, it depends upon my Will to see the Light and listen to the WORD when I like. I may or may not visualise the Holy form of the Guru. It depends upon me to become virtuous or not. It depends upon my will to become a sinner or Saint. The ONE that sees the Light, listens to the WORD and visualises the Guru within, I make a search for it, but in this search "I" also stand lost. My "Self" stands merged in the unkown, Un-speakable, Un-named and Infinite Being. I have told you obout my experiences and my research. Now, you please listen to Saint Kabir—

"O' Friend! that Dwelling stands distinct from all
Where dwells my Lord Supreme,

Neither sorrow, nor joy is there
And neither Truth nor Falsehood,
Nor does exist there vistue, nor sin,
Neither day nor night is there
Nor the Sun nor the moon.
Light is there without Lamp
Neither knoweldge nor meditation
Nor Penance nor recitation of Name,
Nor performance of austerities
Neither speech, nor sacred scriptures
Nor deeds, Nor the Veda itself, nor dwelling
Neither in nor out
Neither microcosm nor macrosm is there.
Neither the Five elements, nor the three qualities are there
Neither the WORD nor its witness is there,
Neithe root, nor Flower, nor seed nor creeper
There are pleasant fruit, though without a Tree,
Neither O'ang, nor So'hang, nor any upward going nor downward coming
Even Breathing is not there,

Neither the Absolute, nor the manifested
is there O' my brother !

Neither the gross nor the subtle,
Neither the decaying nor the Imperishable,
O' brother !

These are only the myths of the world,
Where dwells the Sat-Purusha, there is
Nothing else besides,

Sayeth Kabir, Tis all known to me,
And he who takes my hint—
Attains Salvation".

My search has been certified by Saint Kabir as correct. Had I got any desire for name, fame and wealth, I too would not have revealed this secret. I too would have established many big centres, purchased latest models of motor-cars, and built huge mansion. But that is not my mission. I am here to obey my Sat-Guru, and reform the mode of Teaching and Preaching to seekers of Salvation.

Yesterday, an old lady come to me and said, "I got initiation from Sahib Ji Maharaj about 25 years ago. I had forgotten everything and I used

to semain very unhappy. But I had a thought that the true Guru if any, wil positively send out a call for me. At 12-30 at night you came and asked me to attend your Sat-Sang". She further said, that even though she was not well, even than she had come to attend my Sat-Sang. The Truth is that I never knew anything about that lady nor do I know about the happening. I proclaim that I am the "Saint Sat-Guru of this Age", and I have come to save you and protect you from religious exploitation. I am imparting you the True knowledge, so that you may be aware of the Truth.

So, what is it that is proved about that Witness or the Supreme Lord or God ? God is that God is that state, on reaching which, my own entity and identity get lost. The feelings of Thee and me, Guru and the Disciple, and of the Lord and the devotee do not exist there. There is neither form nor colour, stil an existenc is there, which cannot be named, explained or seen. Mind, Intellect, Consciousness and Ego do not exist there. This is what my research has proved. I have journeyed through life very earnestly and very

conscientiously. The result of my research tally with the finding of Saint Kabir. Therefore, I am Kabir ! Verily I say unto you, "I am Kabir". You might object to it as only tall talk. But I am not bluffing. I am only telling the Truth.

I declare that I do not go to manifest myself any where. Whatever you get, is the fruit of your own Faith and Fate. Saint Kabir writes—

Nothing did I do, and nothing could I do,
Nor am I capable of doing anything,
Whatever was done, was done by Him;
And all the credit came to Kabir
Who thereby became GREAT !!

I declare from the tree-tops and tower-tops that I do not go any where to manifest myself before anybody, I do not perform any miracles nor do I possess any such power. Whatever you have got, whatever you get, and whatever you will get, is the result and outcome of your own Karm, your own faith and your own belief. Who am I to give you anything ? It is my duty to impart to you True knowledge, to tell you the Truth and to

remove your doubts and false notions. Those who believe that it is I, Baba Faqir, who comes to them to guide them and solve their problems, are sadly, badly and madly mistaken. They are under the dominance of their mind and MAYA, i. e., illusion. Your mind itself is a replica in miniature of the Universal Mind. It will serve you according to your own desire and thoughts. Now let me quote a couplet—

The month of Jeshtha is, very long and full of suffering,
And Man's heart is strongly **burning** to achieve its goal.

What is this **burning** ? Every individual wants to see "Something" face to face. The word for this want or desire to meeting Him is known as "burning". Wordly people have a "burning" (desire) for worldly name and fame. whereas a True seeker has a "burning" (desire) to get back to his Source, the Supreme Being.

(CONTINUED)

NEOPLATONISM AND INDIAN THOUGHT

H. H. Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

In order to throw sufficient light on the epistemological method of the **Vedas**, it is important to st te that two types of knowledge have been accepted by the Uedic seers, viz.—

(1) Vijnana (Scientific knowledge), and

2) Jnana (Comprehensive knowledge).

The word Vijnana is the combination of Vi+ Jnana. Vi means "plurality, individuality, and changeabiiity". Jnana literally means "knowledge, awareness and understanding", but in this context,

it has to be understood as "inner-most knowledge" Hence, the entire metaphysics of the Vedas, which later on is elaborated by the Upanisads, the Bhagavadgita and the classical systems, has two aspects. The Vijnana aspect is concerned with the pluralistic nature of particularities and the changeable nature of the universe. The Jnana aspect is connected with the innermost unity behind the diversity. The two trends in the Vedas are called Mantra Vidya (science of unity), and Yajna Vidya (science of plurality). The Mantra Vidya is also called Mula Vidya (science of the root), and Yajna Vidya is called Tula Vidya (science of explanation). Further, Mantra Vidya is designated as Brahman Vidya (the science of ultimate Being), and Yajna Vidya is called Brahmana Vidya (science of cosmic processes or forces).

The Vedic metaphysics, therefore, is both monistic and phuralistic, unitive and divisive. The unity concerns the inner-most ground and the diversity is associated with the extended pluralistic cosmic reality. The unitive philosophy is a matter of recognition and realization, termed as Darshana

(seeing). The pluralistic reality is matter of actual behavior, practice and grappling with the environment, termed as Varttana. This thought has been summed up in the statement "Samadarshna and Vishamavarttana", i. e., "unitive phllosopby and differentiative behavior". By differentiation is meant the acceptance of the differences between the subject, and object self and environment. Wherever the word Drst (seeing) has been used in Indian thought, it refers to Drashta (seer, the self). Wherever the word Varttana is used, it refers to a concrete situation of reciprocity between the unitive self and pluralistic environment. This ethico-metaphysical characteristic of Vedic thought pervades the history of Indian philosophy from the ancient to the modern times. That is why all the classical systems are unanimous in basing their views on the Vedic authority.

The other concepts which need clarification are those of Brahman and Atman. The word Brahman cannot be translated exactly. It has been suggested that Brahman is that which expands, because the term Brh means "to expand". This would be a wrong translation, because the Vedas,

the Upanisads and the Bhagavadgita refuse to accept Brahman as an activity itself, though all activity is due to Brahman. All three sources of Indian thought referred to here are unanimous in accepting the fourfold nature of Brahman—

(1) Avyaya Brahman (the eternal infinite ground of all, not even One).

(2) Aksara Brahman (the indestructible One, absolute caus).

(3) Atmaksara Brahman (the supreme self, endowed with the potentiality of creation, preservation and destruction, and hence a creator, not yet differentiated in subject and object). and

(4) Visvasrit Brahman (cosmic form, the pluralistic world of galaxies, super galaxies and individualities as an irradiation of just one spark of the supreme self).

It is noteworthy that Avyaya Brahman is not even One or a unity. In this sense, the One of Plotinus may be closer to Avyaya, though not exactly dentical with it. The Avyaya is also called Parat-

para (beyond the beyond). Aksara is the absolute indestructible cause. It is the One unmanifested, potential cause, which at the next stage becomes Paramapurusa, Atmaksasa (the supreme self, or literally, the supreme person). It would be crreneous to entertain any anthropomorphic idea of a person here. The literal meaning Atmaksara is "Sel-limitation of industructible reality". Comparison can be misleading. It cannot be identified with the world soul, nor completely with Nous. It is more Nous than world soul. It is an irradiation from Aksara Brahman which is both One and the Nous as a potentality. This explanation would give the reader an idea why many Upanisadic passages appear to be contradictory, though they are not so.

The Vedic and the Upanisadic Brahman are identical on account of this fourfold nature — The ground the cause, the supreme self, and the cosmic form.

Atman (the self) or Purusa (man) is exactly a miniature Brahman. The fourfold nature of man has been stated to be the sum of Atman (pure

being), the Buddhi (the causal self), the Manah (the creative psyche—mind), and Sarira (the physical body with sense organs and organs of action). The gradation in the case of Brahman from Avyaya to Visvasrit is from subtle and most fundamental to less subtle and dependent as abvolly stated. n the case of man, called Adhyatma, the gradation is from the most subtle to the most gross. Based on this fourfold cosmic metaphysics and human nature, are the fourfold social, ethical and philosophic systems in the Vedas, the Upanisads and the Bhagavadgita. Unlike Plato, the social system in the Vedic tradition is not threefold, but fourfold, because of the spiritual, the intellectual, the mental, and the physical aspects. The fourfold values parallel to Platonic virtues are Artha economic value), depending on temperance; Kama (love), depending on justice and courage; and Mokso (spiritual perfection), depending on wisdom. The Upanisads also state the fourfold natue of knowledge, based on the four levels of Jagrat (waking consciousness); Svapana (dream consciousness); Susupti (deep sleep consciousness or unconsciousness); and Turiya (supra-consciousness, associated

with the spiritual self, the causal self, the mental self and the physical self, respectively). The word Cit (consciousness) applies both to waking and dream consciousness and the word Acit (unconsciousness) as the ground of Cit (consciousness), is not to be understood as deviod of consciousness. The word Turiya is beyohd the concept of Cit and Acit. Incidently, Plotinus's gradation of the stages from the physical to the level of the One, so far as soul's journey back to the One is concerned, seems to be parallel to this hierarchy.

The detailed discussion of the fourfold of nature of Purusa in the Bhagavadgita is given in the article "The Plotinian One and The Concept of Parampurusa in the Bhagavadgita". However, it seems important to mention that the philosophy of the Bhagavadgita propounds four, not three paths, as it is commonly believed. These four paths or the methods, the Yogas, of attaining enlightenment are : the Buddhi Yoga corresponding to the spiritual aspect of man (the Bnddhi here may mean Nous, which is closer to the One); Jnana Yoga, corresponding to the intellectual or rational aspect

(Jnana and Vijnana as explained earlier, are combined in this poth), Bhakti Yoga, corresponding to the mental aspect, and Karma Yoga, corresponding to the physical nature of man. It is pertinent to point out that the first six discourses of the Bhagavadgita are devoted to the Budchi Yoga, the seveuth and eighth discourses expliacate the Jnana Yoga, the ninth to twelfth discourses explain the Bhakti Yoga, and the last six discourses expound the Karma Yoga.

On account of want of space and the propriety of not caossing the limits of the universe of discourse, it would be desireable to confine an introduction to Indian thought to the presentation given above. However, any comments and questions would be welcomed for further clarification.

The thought of the Bhagavadgita is closest to that of Plotinus so far as metaphysics, ethics and epistemology are concerned. Both the Bhagavadgita and Plotinus accept contemplation (Yoga) as the method of salvation or the union of the individual soul with the One. The Bhagavadgita, as has been

stated already, regards the way of intellect (Buddhi Yoga) as the highest technique. Plotinus likewise advocates contemplation. Whether Plotinus's meditation precedes his metaphysical system, or the formulation of the metaphysics precedes meditation, is not of academic significance. The truth is that he asserts that meditation does lead to the union of the One. The Bhagavadgita clearly emphasizes that this Yoga or union of the individual soul with the indestructible One, ultimate Brahman, requires contemplative knowledge of the Truth, including the realization of it in the pluralistic universe as well as constant contemplation of the One. It is also advocated that once perfection or God-realization has been attained, there is no rebirth of the soul. The soul attains its highest abode. It is beyond all limitations of time, space and causality. In the eighth discourse of the Bhagavadgita, it is stated that all the individual beings become manifest or actualized, because their matrix is unmanifested. The etire host of beings is cyclically manifested and merged back into their source. But higher than the unmanifested source (Plotinus's second hypostasis) is another essence, which is subtler than the

subtlest and which is not destroyed even when all manifested beings are destroyed. This unmanifest, indestructible essence is called the ultimate abode. Attainment of that abode means salvation.

The first paper, "Indian Wisdom and Porphyry's Search for a Universal Way", by Dr. O' Meara, is concerned with salvation in the sense of ultimate abode. It highlights many philosophical parallels and historical data with reference to the closeness of the Greek and the Indian culture. The author quotes Saint Augustine to emphasize that Prophyry was aware of Indian thought and culture. It may be recalled here that the quotes from the Greek and Roman sources, including Megasthenes, constantly refer to Cymnosophists. The word Gymnosophists is a variation of the Sanskrit words Jaina Muni, "Jaina monk". It is true that Jainism was popular in India at that time. However, Megasthenes used the term Gymnosophist bote for the Vedic Philoscpheras, the Brahmanas, and the Jaina and the Buddhist ascetics, Sramanas.

The quote from Megasthenes rferring to the similarities between Greek thought and the "first

principles operating in the universe" held by the Indians at that time, is most pertinent. It clearly refers to the philosophy of the Upanisads and that of the Bhagavadgita. Reference to God (Brahman) as light, which is discerned by the enlightened sages, again shows the acquaintance of Megasthenes with the Upanisads and the Bhagavadgita at least indirectly. The Mundaka Upanisad says :

> There the stainless and invisible Brahman shines in the highest golden sheath. It is the light of lights; it is that which they know who know the self.

In the Bhagavadgita as well, Brahman is designated as "'the light of lights', which illumines everything that exists". These facts, combined with the direct or indirect evidence of the mutual exchange between the cultures of Greece and India, are corroborated historically from both sides. Since the philosophies and theories of the then Iindia have been alluded to in Greek sources, it is possible that more evidence in this regard could be collected by the scholars. Professor O'Meara's effort to throw light on the parallels, both philosophical

and historical, opens new fields for further investigation.

The next two papers, "Plotinus and the Upanisads" by Dr. Hatab and "Proclus and the Tejobindu Upanisad" by Dr. Rosan, are necessary for the understanding of Neoplatonism and Indian thought. Dr. Hatab has drawn inspiration from a wider range of Upanisads with a view to removing some misunderstandings about Plotinus and Hinduism. He has made an attempt to point out that it would be erroneous to hold that the world is an illusion, either according to the Upanisads or Plotinus. In this connection, our previous observation about the conneept of Brahman in its four aspects, as depicted in the Vedas, further supports Dr. Hatab' viewpoint.

(CONTINUED)

महत्वपूर्ण सूचना

सभी सत्संगी जन को सूचित करते हर्ष हो रहा है कि मानवता मन्दिर, होशियारपुर के पवित्र प्रांगण में **वसन्तोत्सव** के शुभ अवसर पर दिनाँक **11-2-1997** को प्रातःकाल **8** बजे पूज्य आचार्यवर श्रीमान् विजय नरेश नेगी जी महाराज अपने सत्संग-वचनामृत की वर्षा से सम्पूर्ण संगत को कृतार्थ करेंगे।

सभी प्रेमी सत्संगी भाई-बहनों से विनम्र निवेदन है कि इस महोत्सव पर आध्यात्मिक सत्संग में पधार कर लोक-परलोक जीवन सफल करें।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।

BOOK POST

Regd NO. 26265/74

MANAV MANDIR

FEB 10 th 1997

PB HSP—

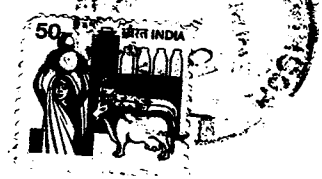

Address

540. Dr. T. Kalpna Devi,
Jaya Nursing Home Chaurasta,
HANAMKONDA. 506001. (A.P)

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD
HOSHIARPUR 146001

PHONE 22639

Shiv Dev Rao Press manavta mandir Pb